॥ રામ ॥

॥ रामकथा ॥

मोरारिबापू

मानस-पुन्यपुंज

फैरफेक्स (वर्जिनीया)

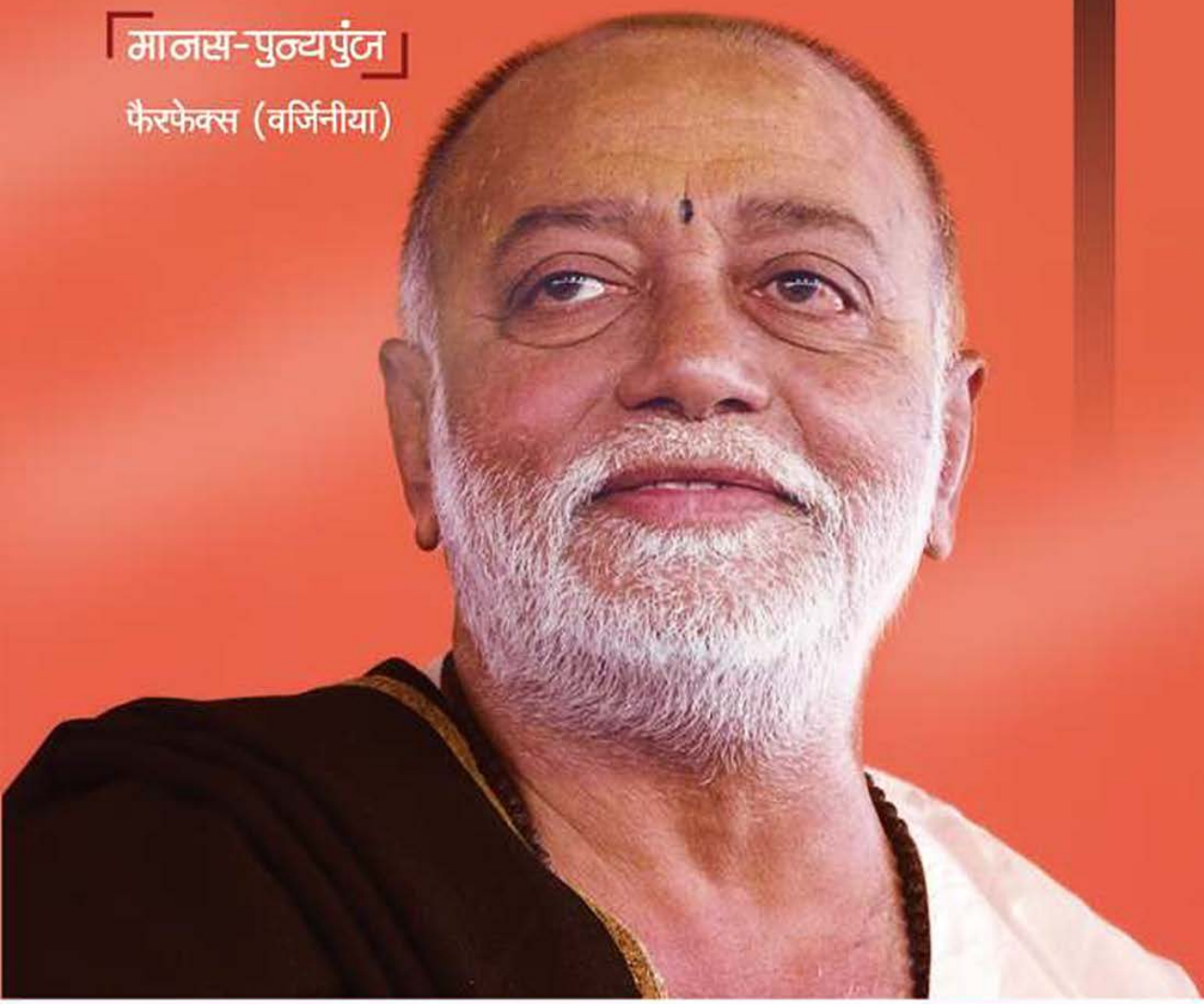

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा। सेवहु जाइ कृपा आगारा ॥
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता। सतसंगति संसृति कर अंता ॥

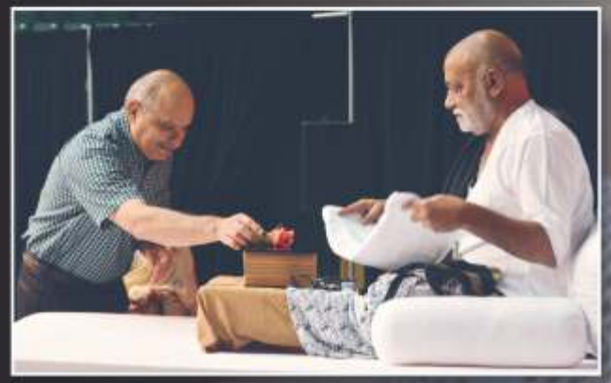

१ प्रसन्नता परमात्मा का पर्याय है ।

२ श्री हनुमानजी में कायिक, मानसिक और वाचिक पुन्य है।

३ आज एक 'धर्म स्वच्छता अभियान' भी होना चाहिए।

४ शास्त्र फल नहीं देता, शास्त्र रस देता है।

५ प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है।

६ सद्गुरु की आंख ही शिष्य के लिए मंदिर है, गुरुद्वारा है।

७ चित्रकूट पुन्यपुंज है, महिमावंत है।

८ कोई बुद्धपुरुष जब कहे कि तू मेरा है तब समझना हम पुन्यपुंज है।

९ 'मानस' स्वयं पुन्यपुंज है।

|| रामकथा ||
मानस-पुन्यपुंज

मोरारिबापू
फैरफेक्स (वर्जिनीया)
दिनांक : २७-६-२०१५ से ५-७-२०१५
कथा-क्रमांक : ७७९

प्रकाशन :
अगस्त, २०१६

प्रकाशक
श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट,
तलगाजरडा (गुजरात)
www.chitrakutdhamtalgajarda.org

कोपीराईट
© श्री चित्रकूटधाम ट्रस्ट

संपादक
नीतिन वडगामा
nitin.vadgama@yahoo.com

राम-कथा पुस्तक प्राप्ति
सम्पर्क-सूत्र :
ramkatha9@yahoo.com

ग्राफिक्स
स्वर अेनिम्स

प्रेम-पियाला

मोरारिबापू की रामकथा दिनांक २७-६-२०१५ से ५-७-२०१५ दरमियान फैरफेक्स (वर्जिनीया) में सम्पन्न हुई। श्रद्धा-साधना के दिनों में और श्रद्धाजगत की मान्यता के मुताबिक पुण्य कर्म करने के पवित्र पुरुषोत्तम मास में गाई गई इस कथा को बापू ने 'मानस-पुन्यपुंज' पर केन्द्रित की। पिटेपिटायें पुन्य नहीं बल्कि जिस पुन्य से परम का अनुभव हो, परम का निरंतर सामीप्य प्राप्त हो और संत की प्राप्ति हो ऐसे कुछ गर्भित पुन्यों-गर्भित शुभों की खोज करने हेतु बापू ने 'मानस-पुन्यपुंज' विषय पर कथागान करना उचित समझा।

'प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है।' जैसे सूत्रात्मक निवेदन के साथ बापू ने कहा कि पुन्य का एक अर्थ है पवित्रता। पुन्य का एक अर्थ है उत्तम अर्थ। एक उच्चतर श्रेष्ठ विचार पुन्य है। आप कुछ करो ना, आप मानसिक रूप से सोचो कि मेरे पडोशी का बहुत अच्छा हो; कोई बीमार है उसका अच्छा हो, उसका आपको पुन्य मिलेगा। केवल मानसिक रूप से उत्तम विचार पुन्य है। मन की पवित्रता पुन्य है। लेकिन हम स्वच्छ है, पवित्र नहीं है!

श्री हनुमानजी में कायिक, मानसिक और वाचिक पुन्य को रेखांकित करते हुए बापू ने श्री हनुमानजी में निहित ग्यारह प्रकार के पुन्य को भी सदृष्टांत उद्घाटित किया। तदुपरांत बापू ने श्रम, विश्राम, अपना स्वभाव, सहनशीलता और स्वीकार जैसे पांच प्रकार के पुन्य का विशद परिचय भी दिया। पुन्यपुंज की श्रेणी में बापू ने गाय, तुलसी का पौधा, सद्ग्रंथ, गुरु की दी हुई कोई चीज या पादुका-माला, किसी महापुरुष के मुख से निकला मंत्र या सूत्र, गंगाजल या कोई भी पवित्र नदी का जल जैसी कई वस्तुओं को समाविष्ट की और कहा कि इक्कीसवीं सदी में नये-नये पुन्य अर्जित करने पड़ेंगे।

'रामचरित मानस' को पुन्यपुंज का दर्जा देते हुए बापू ने 'मानस' के विभिन्न पुन्यतत्त्व को भी निर्दिष्ट किये। बापू का कहना हुआ कि पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश जैसे पांच तत्त्वों को मनीषियों ने पुन्य कहा है, ये पांचों 'मानस' में है और तत्त्वत: 'मानस' भी पुन्यपुंज है, पुन्यराशि है।

'मानस-पुन्यपुंज' रामकथा के माध्यम से यूं मोरारिबापू की व्यासपीठ से पुन्यपुंज के संदर्भ में विशिष्ट दर्शन प्राप्त हुआ।

– नीतिन वडगामा

प्रसन्नता परमात्मा का पर्याय हैं

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा । सेवहु जाइ कृपा आगारा ।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता । सतसंगति संसृति कर अंता ।।

बाप, भगवत् कृपा से अमरिका की इस पाटनगरी में रामकथा का आयोजन हुआ और नव दिन के लिए हम सब इसके लिए एकत्रित है। कथा में उपस्थित पूज्य स्वामीजी महाराज, पूजनीय नगीनदासबापा, अन्य सौ वडीलो, आप सब भाई-बहनों; सब को व्यासपीठ मे मेरा प्रणाम। वोशिंग्टन की ओर से बहुत सालों से कथा की मांग रही। अब तो वो नहीं रहे शरीर से, हमारे परमस्नेही चंद्रकांतभाई का निरंतर आग्रह रहा कि एक बार ओर कथा हमें मिले। फ़िर डो. नीरजसाहब और आप का पूरा सदस्यगण अथवा तो पूरा समाज अक्सर कथा की याद दिलाते रहते थे। तो, इस तरह ये कथा यहां आयोजित हुई। 'जोग, लगन, ग्रह, बार, तिथि' के अनुसार जब योग होता है, जहां होता है, वहां सत्संग हो पाता है। तो, आप की संस्था के ज़रिये और कथा के माध्यम से आप सब को राम के नाते मिलना हो रहा है, इसकी खुशी है।

मैं सोच रहा था कि इस नवदिवसीय कथा में किस विषय पर खास करके आप से मेरा वार्तालाप हो, संवाद हो। वोशिंग्टन में आप जानते हैं, 'मानस-भक्तिमणि' पर कथा हुई है। आप जानते हैं कि अपने हिन्दुस्तानी केलेन्डर के अनुसार, भारतीय तिथिपत्र के अनुसार ये अधिक मास चल रहा है। 'पुरुषोत्तम मास' जिसको कहते हैं; प्रथम अषाढ़ अधिक है। और अधिक मास में लोग अधिक कुछ साधन, अनुष्ठान, साधना आदि अपनी-अपनी श्रद्धा और रुचि के अनुसार करते रहते हैं। सोच रहा था कि किस विषय पर बोलूं। मन में आया कि 'मानस-पुन्यपुंज' पर बोलूं। ये मास श्रद्धाजगत कहता है, अधिक पुण्य कर्म करने का मास है। इस महिने में लोग अधिक सुक्रित करते हैं। पुन्य मानी शुभ। और पुन्य की लंबी-चौड़ी व्याख्या में मुझे जाना भी नहीं है। और ये 'पाप' और 'पुन्य' ये शब्द के प्रति मेरी बहुत समझ

नहीं है। लेकिन पुन्य मानी सुचिंतन, पुन्य मानी शुभ विचार, पुन्य मानी शुभदृष्टि, पुन्य मानी शुभ कर्म।

'मानस' में बिलग-बिलग जगह पर बहुत विशाल फलक पर पुन्य की व्याख्या आई है। पाप की व्याख्या भी इतनी ही आई है। अब 'पुन्यपुंज' यहां कर रहा हूं तो कभी कहीं 'पापपुंज' भी करूंगा। लेकिन पुन्य और पाप करीब-करीब जुड़े हुए रहते हैं। तुलसी की एक पंक्ति हैं-

दुख सुख पाप पुन्य दिन राती ।
साधु असाधु सुजाति कुजाती ।।
जद्यपि सम नहिं राग न रोषू ।
गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।।

तो, पाप-पुन्य, रात-दिवस, सुख-दु:ख, अमृत-ज़हर, जड़-चेतन ये द्वन्द्वात्मक सृष्टि जो है, उसमें पाप-पुन्य की बातें आती है। विशेष रूप में हम प्रसन्न रह सके। जिसका जैसा पुरुषार्थ, जिस पर जितनी परमात्मा की कृपा, इतने लोग सुखी तो है करीब-करीब। लेकिन प्रसन्नता और पवित्रता वो शायद कम हो, हो सकता है। और उसके कारण शांति भी हम कम अनुभव करते हो। इसीलिए इस कथा में हम साथ में मिलकर विचार करें कि ऐसे कौन शुभ कर्म है, ऐसा कौन पुन्य कर्म है, जिससे हम विशेष पवित्र रह सके और विशेष प्रसन्न रह सके। मेरी व्यासपीठ एक सूत्र कहा करती है कि प्रामाणिकता के बिना आदमी पवित्र नहीं रह सकता। मुझे ऐसा लगता है। आप अपने ढ़ंग से सोचिए। आदमी जितना ज्यादा प्रामाणिक इतना आदमी पवित्र माना जाना चाहिए। तो प्रामाणिकता के बिना आदमी पवित्रता नहीं प्राप्त कर सकता और पवित्रता कम होने के कारण आदमी प्रसन्न नहीं रह सकता। मेरे अनुभव में ये एक क्रम है। और मेरी दृष्टि में प्रसन्नता परमात्मा का पर्याय है। प्रामाणिकता, पवित्रता, प्रसन्नता इक्कल-बराबर परमात्मा। अधिक रूप में हम इन तत्त्वों को महसूस कर सके इसलिए मुझे लगता है कि इस पर बोलूं।

शुभ-अशुभ कर्म हम अपने-अपने ढ़ंग से जानते होते हैं। स्वार्थवश, मज़बूरी, प्रलोभन या तो भय के कारण हम अशुभ में प्रवेश कर जाते हैं ताकि शायद सुखी तो हो जाते हैं लेकिन प्रसन्नता गंवा बैठते हैं। तो प्रसन्नता प्राप्त करने के लिए अधिक मास में हम अधिक प्रसन्नता प्राप्त करे ताकि आगे का जीवन हम इस परम का विशेष अनुभव कर सके। तो, मैंने 'उत्तरकांड' से दोनों पंक्तियां ली है, जिसमें 'पुन्यपुंज' शब्द आता है। भगवान राम अपने मित्रों को, सखाओं को जो-जो लंका विजय के बाद साथ में अयोध्या आये हैं, छ: मास के बाद भगवान अपने सखाओं को बिदा करते हैं कि अब आप अपने-अपने कार्य में अपने-अपने घर जाईए। और अपना कर्तव्य, अपना दायित्व निभाएं। अयोध्या में रहकर आप अपना संसार याद करे इससे बेटर है कि आप संसार का कार्य करते-करते अयोध्या को स्मरण में रखें। बहुत प्रेक्टिकल निर्णय प्रभु ने दिया। तो सब बिदा लेते हैं।

प्रसंग आप जानते हैं 'उत्तरकांड' का। उसमें भी हनुमानजी महाराज की बिदाई की बारी आई तब हनुमानजी सुग्रीव से प्रार्थना करते हैं क्योंकि श्री हनुमानजी सुग्रीव के सचिव है। यद्यपि राम मिलने के बाद भी! कोई इससे बड़ा मालिक नहीं हो सकता। राम मिल गया, परमात्मा मिल गया। फ़िर सुग्रीव तो एक विषयी जीव, सामान्य आदमी था। लेकिन हनुमानजी पहले से उनके पास रहे तो हनुमानजी ने हमें एक मर्यादा अथवा तो विवेक का बोध दिया कि आप को कोई बड़ी उपलब्धि हो जाय तो भी आप पहले जिसके पास हो उसके प्रति आदर कम मत करना। उसकी आज्ञा लेकर आगे बढ़ना। कभी-कभी क्या होता है हमारे सब के जीवन में कि कोई बड़ा पद मिल जाय, बड़ी उपलब्धि मिल जाय, कोई बड़े आदमी से संबंध हो जाय तो फ़िर हम शुरू-शुरू में जिसके पास होते हैं उसको अनदेखा, अनसुना कर देते हैं। ये 'रामायण' के सूत्रों के अनुसार नहीं है।

तो हनुमानजी ने ये नीति बताई कि सुग्रीव से कहते हैं कि आप कहे तो मैं तो आप का सेवक हूं, आप के साथ किष्किन्धा चलूं? और यदि आप मुझे आज्ञा दे तो कुछ समय मैं अयोध्या में रहूं। ऐसी हनुमानजी ने जब आज्ञा मांगी तब ये पंक्ति आई कि हे हनुमानजी, आप पुन्यपुंज है। सुक्रित का ढ़ेर है आप। शुभ का समूह है आप। इसलिए आप अयोध्या में रहकर कृपाआगार यानी कृपा का मंदिर भगवान की सेवा में रहो।

व्यासपीठ ने कई बार कहा है कि 'भगवद्गीता' में लिखा है कि आदमी बहुत पुन्य करता है तो फ़िर उसको स्वर्ग मिलता है। और वहां पुन्य खर्च करना पड़ता है। पुन्य खर्च हो जाय तो कहते हैं कि उसको फ़िर मृत्युलोक में पृथ्वी पर इस जीवात्मा को भेज दिया जाता है। पूरा हुआ कि नीचे!

अयोध्या एक ऐसी अवस्था है, वहां से सब लोग अपने-अपने संसार में जा रहे हैं। कोई किष्किन्धा, कोई लंका, कोई शृंगबेरपुर, जहां-जहां जो थे। लेकिन हनुमानजी महाराज को अवध की ऊंचाई से नीचे नहीं आना पड़ा क्योंकि श्री हनुमानजी महाराज पुन्यपुंज है। इसीलिए वो अयोध्या में रहते हैं प्रभु की सेवा के लिए। तो वहां 'पुन्यपुंज' शब्द आया। फ़िर दूसरी पंक्ति जो इस कथा के लिए व्यासपीठ ने उठाई है वहां है कि व्यक्ति का अत्यंत पुन्य जब तक न हो, तब तक संत नहीं मिलता। और कोई संत, कोई बुद्धपुरुष, कोई सद्गुरु, कोई आंतर्-बाह्य सज्जन मिल जाय तो ये संसार जो दु:खालय माना गया है, कई प्रकार के संकटों से भरा ये संसार इन मुसीबतों से आदमी मुक्त हो जाता है। लेकिन मिलता है बहुत पुन्यों के समूह से।

तो ये बात हुई मेरे भाई-बहन, एक तो भगवंत की सेवा बहुत पुन्यों से प्राप्त होती है। दूसरी बात हो गई, किसी संत का मिलना ये भी बहुत पुन्य इकठ्ठे हो जाय तब उसकी प्राप्ति होती है। ठाकुर-सेवा और संत-सामीप्य दोनों पुन्यपुंज के बिना संभव नहीं। ऐसा इन दो पंक्तिओं का बहुत सीधा-सादा ये अर्थ है। तो इन दो पंक्तिओं के आधार पर यहां की कथा का मेरी व्यासपीठ 'मानस-पुन्यपुंज' नामकरण करती है।

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा ।
सेवहु जाइ कृपा आगारा ।।
पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति संसृति कर अंता ।।

ये कौन पुन्य है जिस पुन्य से हमें कोई साधु का मिलन हो; ऐसे पुन्यों का ख्याल करना होगा। गुजरात में, देहातों में साधु-ब्राह्मण को भोजन कराये तो कहते हैं कि आदमी पुन्य कर रहा है। कोई मरीज़ की सेवा करे तो ऐसा जो-जो कर्म है उसको पुन्यों की संज्ञा मिलती है। ये बहुत अच्छी बातें हैं, ये कोई वो बातें नहीं है। लेकिन ऐसे खास पुन्य है जो हम अर्जित करे तो संत मिले? मानों एक लाख रूपये दान किसीको दिया तो ये पुन्य है। प्रभु, मैं पुन्य करूंगा। लेकिन ये पुन्य से आप को कोई संत मिला कि अहंकार मिला इसका निर्णय करना होगा। आपने किसीके लिए कुछ किया, कोई न कोई रूप में इसका फल आप को मिला? वाह मिली? प्रतिष्ठा मिली? मिलनी चाहिए। मिले, कोई भी राजी होगा कि आपने कुछ किया और प्रतिष्ठा मिली। लेकिन पूर्णरूपेण सत्य पुन्य इसीको समझना मेरे भाई-बहन कि जिसके कारण कोई संत की भेंट हो जाय। कोई बुद्धपुरुष या कोई सद्गुरु का हमें आश्रय मिल जाय। आप कल्पना करे, 'रामचरित मानस' में लिखा है-

जनक सुकृत मूरति बैदेही ।
दसरथ सुकृत रामु धरें देही ।।

सुकृत मानी सीता है। महाराज दशरथजी ने कुछ ऐसे पुन्य किये कि राम देह धारण करके आया। तो जनक को जानकी मिली, दशरथ को राम मिला। ये तो ब्रह्म है, परमात्मा है, परम है। तो दशरथ ने और जनक ने ऐसे कौन पुन्य किये जिसके कारण उसको ये मिला? चौदह साल भगवान राम का सामीप्य प्राप्त हुआ, राम का दर्शन प्राप्त हुआ। मुझे लगता है ये कुछ नूतन पुन्य तो मैं नहीं कहूंगा लेकिन उपर-उपर के पुन्य की चर्चा हुई। मूल पुन्य

क्या है उसकी खोज यदि हम इस कथा में कर पायें तो मुझे लगता है कि हमारा जीवन विशेष अधिक महिने में अधिक प्रसन्न हो सकता है। पिटेपिटायें पुन्य नहीं। तुमने हवन कर लिया, पुन्य हो गया। आप ने कथा बिठा दी, पुन्य हो गया। अच्छी बात है कथा बिठाई। न बिठाते तो हम कहां आते? ये अच्छा है। आप ने कथा में योगदान दिया कि हम ये करेंगे, हम ये करेंगे, तो ये पुन्य ही तो है। लेकिन जिस पुन्य से परम का अनुभव हो, परम का निरंतर सामीप्य प्राप्त रहे और जिस पुन्य से संत की प्राप्ति हो वो कुछ गर्भित पुन्यों, गर्भित शुभों उसकी हमें खोज करनी रहेगी। और हम इस दृष्टि से इस कथा को लेंगे। इक्कीसवीं सदी में हम जिस संसार में बस रहे हैं, जिस स्थिति में रहे हैं, जिसमें हम जी रहे हैं ऐसे समय में कौन पुन्य, जो हमें बोझिल न बनायें, हमें अहंकारी न बनायें और हमें कोई बुद्धपुरुष की शरण प्राप्त हो जाय। हमें कोई श्रेष्ठ की सेवा मिल जाय ऐसे कौन पुन्य है? हम और आप मिलकर उसकी खोज करेंगे इस कथा में ख़ास करके। मेरी दृष्टि से इस विषय पर कभी बोला नहीं गया है। मैं फ़िर एक बार कहूं कि यहां मूल रूप में कुछ कहने की मेरी चाह है। यहां मैंने पहले ही कहा है कि पुन्य मानी शुभ। ऐसे कर्म जिससे शांति मिले; ऐसा बोलना कि जो बोलने के बाद ग्लानि पैदा न हो वो पुन्य है। ऐसा सोचे कि जिस सोच के बाद भय न जागे कि मेरा ये चिंतन कोई दु:खद परिणाम प्रदान न करे ऐसा कोई शुभ। 'शुभ' शब्द याद रखना। 'पुन्य' अच्छा शब्द है लेकिन 'शुभ' शब्द ज्यादा मुझे प्रिय है। बाकी भगवान शंकराचार्य के शब्दों में तो दोनों को निकाल देने की बात कही। आप सब जानते हैं, मैं गाता रहता हूं-

न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खं
न मन्त्रो न तीर्थं न वेदा न यज्ञा:।
अहं भोजनं नैव भोज्यं न भोक्ता
चिदानन्दरूप: शिवोऽहं शिवोऽहम्।।

एक ऊंचाई पर तो जगद्गुरु कहते हैं कि मेरे लिए क्या पुन्य? क्या पाप? सब छूट गया क्योंकि मैं स्वयं चिदानंद शिवरूप हूं। लेकिन हम तो जीवदशा में है। 'शिवोऽहम् शिवोऽहम्' गा लेते हैं। गाना अच्छा लगता हैं लेकिन वो अवस्था तो हमारी नहीं है, जिस लेवल पर हम है। इसीलिए शुभ के रूप में कुछ पुन्यों की चर्चा मुझे आवश्यक लगती है। बाकी उपर उठ जाय उसके लिए क्या पुन्य? क्या पाप? गोस्वामीजी आख़िर में पाप-पुन्य का स्मरण करते हैं 'रामचरित मानस' में-

पुण्यं पापहरं सदा शिवकरं विज्ञानभक्तिप्रदं
मायामोहमलापहं सुविमलं प्रेमाम्बुपूरं शुभम् ।

कहकर वहां पुन्य का स्मरण किया है। तो कुछ शुभ जो युवान भाई-बहन भी आचरण कर सके, जिस पुन्य में कर्मकांड कम हो। कर्मकांड का विरोध नहीं है लेकिन उसकी मात्रा कुछ कम हो, सम्यक् हो; अधिक नहीं। मैं अभी बिहार में कथा कह रहा था तो मैंने सुना कि इतने लोग पुन्य के लिए कर्मकांड करवाते हैं तो लोग अपनी जमीन बेचकर करवाते हैं! लोगों को कहा जाता है, 'ये करोगे तो पुन्य होगा, ये करोगे तो ये होगा, फल्लां होगा, फल्लां होगा!' और कर्जा ले लेकर पुन्य कर्म कराते हैं! ऐसे पुन्य कार्य की चर्चा मेरे स्वभाव में यहां नहीं है। शंकराचार्य भगवान ने तो कह दिया 'न पुण्यं न पापं न सौख्यं न दु:खं', सीधा फल बता दिया कि पुन्य ही नहीं तो फल कैसा? क्योंकि पुन्य का फल हम सुख मानते हैं। कोई पुन्य नहीं है तो सुख भी नहीं है। कोई पाप नहीं है तो दु:ख भी नहीं है। बिलकुल क्रमश: गणित के मुताबिक उसने इन बातों को हटा दिया।

तो बाप! सरलता से हम जी सके ऐसे कुछ पुन्य खोजने चाहिए। ऐसे शुभ तत्त्वों की तलाश हम साथ में मिलकर करे। एक कथा होती है तो कितना बड़ा आयोजन करना पड़ता है? तो इतना बड़ा आयोजन, इतना समय, इतना खर्चा, ये सब होता है तब ये व्यर्थ न जाय। कुछ ऐसे शुभ तत्त्व की हम पहचान कर लें ताकि इन शुभ समूह के कारण हमें कोई बुद्धत्व को प्राप्त व्यक्ति का संग प्राप्त हो जाय। अथवा तो कोई परम सेवा हमें प्राप्त हो जाय। तो, ये भूमिका रही। आये दिन उस पर हम

विशेष रूप में चर्चा करेंगे। जो एक प्रवाही परंपरा है उसके मुताबिक रामकथा का मंगलाचरण आदि गायन कर लें। आप सब बहुत परिचित है 'मानस' से। और ज्यादा से ज्यादा लोग 'रामचरित मानस' को आत्मसात् करने में लगे हैं। इक्कीसवीं सदी का ये सद्भाग्य है।

सात सोपान में 'मानस' का जो वाङ्मय रूप है जिसको 'कांड' नाम दिया है। प्रथम सोपान 'बालकांड' में सात मंत्र गोस्वामीजी ने लिखे हैं। हमारी सब की जो मुश्किल है ये ये है कि उच्चारण तो बहुत प्यारा करते हैं। और ऋषि ने पहले ही शास्त्र के आरंभ में ही नाम दे दिया शास्त्र का आचरण। उसका उच्चारण ठीक करे न करे, ऋषि को बहुत चिंता ही नहीं है। ठीक करना चाहिए उच्चारण। लेकिन ऋषि कहे, उच्चारण ठीक हो न हो, आचरण तेरा ठीक हो। ये बहुत महत्त्व की वस्तु है। आचरण बराबर हो। तो सात मंत्रों में ये मंगलाचरण है। पहला मंत्र वाणी और विनायक की वंदना। शिव-पार्वती की वंदना। वाल्मीकि और हनुमानजी की वंदना। सीता-रामजी की वंदना। कुल मिलाकर नव वंदना की है सात मंत्रों में। बीच में गुरुवंदना है। संतों से मैंने सुना है कि तुलसीदासजी ने समझपूर्वक गरु को केन्द्र में रखा है। और गुरु केन्द्र में होना चाहिए। गुरु यानी ऐसा कोई प्रबुद्ध मार्गदर्शक जिसके इर्दगिर्द में हम अपना जीवन धन्य कर सके। इसीलिए गुरुवंदना को केन्द्र में रखा है। फ़िर शास्त्र का हेतु बताया कि ये मैं 'स्वान्त: सुखाय' रचना कर रहा हूं। और फ़िर आप जानते हैं कि श्लोक को प्रणाम करके लोकबोली में गोस्वामीजी पूरा शास्त्र उतारते हैं ताकि हमारे जैसे लोग उसको समझ पायें, आत्मसात् कर सके। तो फ़िर सात सोरठें लिख दिए।

गणेश, भगवान सूर्य, भगवान विष्णु, शिव और पार्वती इन पांच देवों की स्तुति की। गणेश विवेक का देवता है। विवेक का स्मरण किया। सूर्य प्रकाश का देवता है। उजाला हमारे जीवन में हो इसीलिए सूर्य की स्तुति की। विष्णु विशालता का प्रतीक है। हमारा दिल-दिमाग, हमारी सोच विशाल हो, संकीर्ण न हो इसीलिए विष्णु का स्मरण किया। भगवान शिव कल्याण के प्रतीक है। हम कल्याणधर्मी हो, हम कल्याणकर्मी हो इसीलिए शिवस्मरण किया और पार्वती श्रद्धा का प्रतीक है। अल्लाह करे, हमारी श्रद्धा गुणातीत हो। सात्त्विक श्रद्धा अच्छी है। 'मानस' में कहा है, 'सात्त्विक श्रद्धा धेनु सुहाई'; लेकिन आख़िर में वोही श्रद्धा पार्वती के रूप में हमारी सेव्या हो जाय जो गुणातीत है। रजोगुणी श्रद्धा में आदमी बहुत पूजापाठ करेगा। पूजापाठ के बाद ये मिले, ये मिले, ये पूरी रजोगुणी श्रद्धा की क्रिया है। तमोगुणी श्रद्धा में आदमी ऐसी कामना करता है कि मेरी श्रद्धा फलित हो जाय और मैं बदला लूं, मैं दूसरों को परास्त करूं आदि-आदि। सात्त्विक श्रद्धा वो है कि स्वभाव सरल रखकर सत्त्वप्रधान कुछ ध्यान-धारणा एकांत में रहकर करे। योग करे सात्त्विक भाव से। अमरिका को भी बधाई दूं कि अमरिका ने, यूनो ने इक्कीस तारीख को 'वैश्विक योग दिन' उद्घोषित किया। देश में तो कई योगीओं का योगदान रहा; जो हो गये, है, होंगे सब का योगदान है। लेकिन यूनो में ये दिन उद्घोषित हो उसका श्रेय भारत के प्रधानमंत्री आदरणीय मोदीसाहब को जाता है। सब

> मेरी व्यासपीठ एक सूत्र कहा करती है कि प्रामाणिकता के बिना आदमी पवित्र नहीं रह सकता। मुझे ऐसा लगता है। आदमी जितना ज्यादा प्रामाणिक इतना आदमी पवित्र माना जाना चाहिए। प्रामाणिकता के बिना आदमी पवित्रता नहीं प्राप्त कर सकता और पवित्रता कम होने के कारण आदमी प्रसन्न नहीं रह सकता। मेरे अनुभव में ये एक क्रम है। और मेरी दृष्टि में प्रसन्नता परमात्मा का पर्याय है। तो, प्रामाणिकता, पवित्रता, प्रसन्नता बराबर परमात्मा।

बधाई के अधिकारी है। तो, कोई सात्त्विक भाव से योगा करे, ध्यान करे, आसन करे ये सब योग है। और बहुत बड़े पयमाने पर देश में और विदेशों में 'योगदिन' मनाया गया। हमारे लिए एक गौरव का विषय है। लेकिन मेरी निष्ठा तो गुणातीत श्रद्धा में रही। न सत्त्व, न रज, न तम कुछ रहे। केवल पार्वती रहे, गुणातीत श्रद्धा रहे। और फ़िर गुरुवंदना से इस शास्त्र का आरंभ होता है।

बंदउँ गुरु पद कंज कृपा सिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर।।

'गुरुपदकंज'; गुरु के चरणकमल की, गुरु के असंग आचरण की तुलसी ने वंदना की जो नररूप हरि है। मंगलाचरण में गुरु को 'शंकररूपिणं' कहा। एक बात, कई लोगों को अपना गुरु शिव दिखता है। और यहां सोरठें में 'नररूप हरि' एक दूसरी रुचि के अनुसार दूसरा भाव आया कि गुरु है तो मनुष्य के रूप में लेकिन आश्रित को हरि दिखता है, मानो नारायण दिखता है। यहां गुरु शंकर के रूप में है, यहां गुरु हरि रूप में। हरि-हर दोनों रूप में स्थापित किया। जिसके वचन से हमारे मोह के अंधेरे का विनाश होता है ऐसे बुद्धपुरुष की वंदना की। पहले प्रकरण में गुरुवंदना है, आप परिचित है। गुरुचरणकमल, गुरुचरणकमल की रज, गुरुचरणकमल के नख इन सब की वंदना गोस्वामीजी ने की। व्यासपीठ हर वक्त कहती है कि कोई आदमी स्वयं अपनी आत्मा को दीप बनाकर उसके उजियारे में परमात्मा तक पहुंच जाय तो ये उसकी स्वतंत्रता है। उसका सन्मान होना चाहिए। ये उसकी रुचि। लेकिन बहुधा हम जैसों के लिए तो कोई मार्गदर्शक, कोई आधार चाहिए। जिसके आधार पर हम आध्यात्मिक पथ पर आगे यात्रा कर सके। हमारे जैसे लोगों के लिए गुरु अनिवार्य है। और कोई हो जो गुरुपद में न माने तो उसकी आलोचना नहीं होनी चाहिए। लेकिन ये गुरुवंदना का पहला प्रकरण, इसमें गुरु की पहचान करवाई गई कि ऐसा-ऐसा जहां हो उसको गुरु समझना। गुरु की चरणरज से आंख को शुद्ध करके तुलसी ने पूरे जगत को ब्रह्ममय देखा। रज तो एक ऐसी चीज़ है कि आंख में जाती है तो दिखता बंद हो जाता है। हम जैसों का तो अनुभव यही है। तो रज तो अक्सर हम देख न पाये ऐसी सृष्टि कर देती है लेकिन एक रज ऐसी है गुरुपदरज, जो आदमी की दृष्टि ऐसी खोलती है कि प्रत्येक व्यक्ति में उसको ब्रह्म का अनुभव हो।

'रामचरित मानस' स्वयं सद्गुरु है। आप जानते हैं, इस 'रामचरित मानस' रूपी सद्गुरु की एक रजमात्र भी कोई बात हमारी आंख में, हमारी दृष्टि में आ जाय, हमारा दृष्टिकोण यदि इससे बदल जाय तो बहुत फायदा ये हो जाता है कि हम दूसरों की निंदा करना बंद कर देंगे; इर्ष्या करना बंद कर देंगे; द्वेष करना बंद कर देंगे; बदला लेना बंद कर देंगे। इन बहुत-सी वस्तुओं से हम बाहर निकल सकते हैं। कई साधकों ने गुरुचरणरज का सेवन करके इन विकृतिओं से अपने आप को मुक्त किया है इसी समय में, इसी युग में। और किया जा सकता है। तो गुरुचरण की बड़ी महिमा गोस्वामीजी ने बताई है। सब की वंदना की। अच्छे-बुरे सब प्रणम्य है।

सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।।

पूरा जगत तुलसी को सीतारामम्य दिखा। सब की वंदना करते हैं और वंदना करते-करते तुलसीदासजी श्री हनुमानजी महाराज की वंदना करते हैं। तो आईए, हम भी हनुमानजी की वंदना कर लें-

मंगल-मूरति मारुत-नंदन।
सकल अमंगल मूल-निकंदन।।
पवनतनय संतन-हितकारी।
हृदय बिराजत अवध-बिहारी।।

•

अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं
दनुजवनकृशानुं ज्ञानिनामग्रगण्यम् ।
सकलगुणनिधानं वानराणामधीशं
रघुपतिप्रियभक्तं वातजातं नमामि ।।

तो, श्री हनुमानजी महाराज की वंदना के साथ आज की कथा यहां विराम लेती है।

मानस-पुन्यपुंज
॥ २ ॥

श्री हनुमानजी में कायिक, मानसिक और वाचिक पुन्य है

'मानस-पुन्यपुंज', ऐसे तो 'पुण्य' शब्द का प्रयोग हम करते हैं संस्कृत में। लेकिन यहां 'पुन्य' अपभ्रंश के रूप में तुलसीदासजी ने यूझ किया है। एकदम देहाती, गांव की बोली में 'पुन्य' कर दिया है। 'रामचरित मानस' में एक जगह तो 'पुन्य' भी नहीं, 'पुनु' लिख दिया है; इतना देहाती कर दिया है।

जद्यपि सम नहिं राग न रोषू ।
गहहिं न पाप पूनु गुन दोषू ।।

तो, श्री हनुमानजी महाराज पुन्यपुंज है। पुन्यपुंज का अर्थ कल भी किया गया। पुंज मानी समूह, जथ्थो। एक समूहवाचक शब्द है 'पुंज'। अब हम और आप मिलकर संवाद के सूर में बात ये करें कि हनुमानजी में ऐसे कौन पुन्य है, जिस पुन्य की वजह से सुग्रीव इसको आज्ञा दे देता है कि आप राम की सेवा में रहो। तो, ऐसे कौन पुन्य है श्री हनुमानजी में, ये 'मानस' अंतर्गत या साधु की अंत:करण की प्रवृत्ति के रूप में अथवा तो अन्य ग्रंथों से, संतों से जहां-जहां से हमें प्राप्त हुआ हो उसके बारे में हम चर्चा करेंगे। वैसे पुंज को कोई एक अंक में डालना ठीक नहीं। पुंज मानी समूह; फिर भी मेरी व्यासपीठ हनुमानजी के ग्यारह पुन्य की चर्चा करना चाहेगी। इन ग्यारह पुन्य के कारण वो शाश्वत रूप में, कायमी रूप में भगवान की सेवा के अधिकारी बने।

मैं मेरे ढंग से सोचता हूं तो बिलग-बिलग बुद्धपुरुषों ने पुन्य की परिभाषा बिलग-बिलग की है। कहां से शुरू करूं बाप! हिमालय की एक कंदरा में बैठे थे गुरु मछंदर नाथ और उनके चरण में बैठे थे जति गोरख। गुरु और शिष्य के बीच में बहुत-सी चर्चाएं चली। बहुत-से प्रश्न पूछे गए। ओर चर्चा में मैं न जाऊं, एक प्रश्न गोरख का है कि गुरुदेव, आपकी दृष्टि में पुन्य क्या है? आप पुन्य की परिभाषा क्या करते हैं? आप अंदाज कर सकते हैं कि मछंदर ने क्या जवाब दिया होगा? किसीको सोचकर बोलना हो तो बोल सकते हैं। आपको कुछ लगता है? 'कुछ करने के बाद कुछ वापिस लेने की कोई कामना न हो वो ही पुन्य', ऐसा जवाब मछंदर ने दिया होगा गोरखनाथ को ऐसा डोक्टर

साहब मानते हैं। अच्छी बात है। 'परहित बस जिनके मन मोहि।' नरेशभाई, ये मछंदर का जवाब हो सकता है आपकी दृष्टि में। ओर कोई कहना चाहेंगे? 'प्रामाणिकता से जीना ही पुन्य है।' ओर कोई? 'सत्संग ये पुन्य है।' 'सेवा ये पुन्य है।' 'खुद आनंद में रहे और दूसरों को आनंद में रखें' ये पुन्य हैं, वो मछंदरनाथजी ने कहा होगा। अच्छा है। लेकिन आपको आश्चर्य होगा, जो मैंने पढ़ा है सो आपको कहूं। आपके जवाब प्यारे हैं, जरूर। किसी न किसी संदर्भ में ये पुन्य ही तो है। आनंद देना, सहज रहना, परहित करना, कोई भी कामना के बिना दूसरों का काम करना, आदि-आदि जो आप सबने जवाब दिए हैं वो बहुत महत्त्व के हैं। लेकिन मछंदरनाथ ने जो जवाब उस समय दिया वो ये था कि 'गोरख, भिक्षा के समान कोई पुन्य नहीं है।' मैं इस भिक्षावाली बात से ज्यादा सहमत हूं। भिक्षा ये पुन्य है। किसीको भिक्षा करना ये पुन्य है। तिरस्कारभाव से किसी को भीख देना ये पाप है।

पहली बात तो ये कि 'भिक्षा' शब्द बड़ा पवित्र है। भीख बिलग बस्तु है। दो बस्तु समझे बाप, भिक्षा आदर के साथ देनेवाला पुन्य कर रहा है और आदर के साथ दी गई भिक्षा इतनी ही उदारता से प्राप्त करके मुस्कुराते हुए पा लेना वो भी पुन्य है। भिक्षा में देनेवाला भी पुन्य कर रहा है, भिक्षा में भिक्षा जो प्राप्त करता है वो भी पुन्य कर रहा है। इसीलिए संन्यासी के सर्व कर्म छूट जाते हैं। संन्यासी भिक्षा करते हैं। और ये अयाचक भाव से की गई संन्यासी की भिक्षा, उसको मछंदर ने पुन्य कहा है। लेकिन भिक्षा में नियम ऐसा है कि पात्र में जो दिया जाय वो आदर के साथ ले लेना, तो ही पुन्य। आप पहले कहलवा दे कि आज मैं भिक्षा लेने आउंगा और पुरणपोळी देना! तो ये तुमने रेस्टोरन्ट में ओर्डर दिया है! ये तुम भिक्षा लेने नहीं गये हो!

ये घटना घटी हो कि न घटी हो, मुझे खबर नहीं, लेकिन समझने के लिए अच्छा है। एक बार शंकराचार्य भगवान और उसके शिष्य भिक्षा लेने गये थे। और भिक्षा में कोई शराबी की दुकान से निकले तो उसने शंकराचार्य महाराज के पात्र में शराब दे दी भिक्षा के रूप में! और जो भिक्षा के रूप में मिल जाये वो पाना पड़ता है। फिर उसको आप नकार नहीं कर सकते। तो, वहीं जगद्गुरु पी गये! अब जगद्गुरू शराब पी जाए ऐसा कहना भी जरा मुश्किल है! बनी न बनी घटना लेकिन जगद्गुरु, जगद्गुरु है। ध्यान देना, ये हमारे जैसी व्यक्ति नहीं है। तो, शराब पी गये। उसके बाद आठ-दस संन्यासी ओर थे। सबको लाईन में भिक्षा दी। सबने पी ली। जगद्गुरु के सिवा जिन्होंने पी उसको तो अच्छी लगी कि परमात्मा करे इसी गली में ही रोज भिक्षा के लिए आना हो! एक दिन जगद्गुरु ने स्वयं ने योजना बनाई तो एक ऐसी गली में अपने शिष्यों को लेकर जाते हैं जहां सीसा पिघालनेवाले की दुकान थी। जगद्गुरु के पात्र में भिक्षा में उबलता हुआ सीसा डाला गया! और कथा कहती है कि जगद्गुरु शिव नाम रटते-रटते ये पी गये! और कहा कि सबको दीजिए! सबने सोचा कि ये तो मरे! अब ये कैसे पीया जाय? बोले, पीओ! तब चरणारविंद में सब गिर पड़े! जगद्गुरु ने कहा कि बेटे, भिक्षा का नियम है कि स्वाभाविक पात्र में जो मिले वो स्वीकार करना चाहिए। इसीलिए उस दिन शराब आई तो मैंने ले ली। लेकिन इसका मतलब ये नहीं कि फिर तुम रोज पीना शुरू कर दो! पात्र में सीसा आ जाये और सीसा पीने की जिसमें ताकत हो वो कभी शराब भी पी सकता है भिक्षा में। ये घटना घटी कि न घटी उसमें मुझे जाना नहीं है। मैं आप-से निवेदन ये कर रहा हूं कि मछंदरनाथ भिक्षा को पुन्य कहते हैं कि भिक्षा मानी पुन्य है।

हमारे शास्त्रों में मेरे भाई-बहन ऐसा लिखा है, मैंने आपको कई बार कहा भी है कि आप छप्पनभोग भोजन करो, अच्छे से अच्छा भोजन करो, लेकिन केवल भाव बदलकर भिक्षाभाव से भोजन करनेवाला निरंतर उपवासी माना जाता है। ये हमारी सनातनधर्म की परंपरा में एक ऐसा विधान आया है भावभिक्षा का। अब तो ये सब गया समय, लेकिन देहातों में साधु-ब्राह्मण सुबह में

लोट मांगने जाते थे भिक्षा के लिए। ये भीख मांगना नहीं था, ये पुन्य करते थे लोग। भिक्षा प्राप्त करना एक पुन्य है। 'अन्नं ब्रह्मैति व्यजानात्।' ये उपनिषद का सूत्र है कि अन्न को ब्रह्म जानो। ये भारत ही कह सकता है! भारत के अतिरिक्त विश्व की किसी विचारधारा ने अन्न को ब्रह्म नहीं माना है।

मैं आपके घर भिक्षाभाव से यदि भोजन करूं तो ये मैं पुन्य कर रहा हूं। आदमी का खाना भी पुन्य है। पुन्य कोई जीवन से बिलग वस्तु नहीं है। पुन्य निरंतर जीवन से जुड़ी हुई बात होनी चाहिए। पहले तो मैं भिक्षाभाव से ही बिलकुल खाता था तो बहुत पुन्य करता था। अब थोड़ा पुन्य कम हो गया! बहुत साल तक मैंने भिक्षाभाव से खाया। मेरे एक पात्र में जो डाले, मैं खाता हूं! लेकिन मुश्किल ये होने लगी कि परोसनेवालें भाव में होते हैं, तो मुझे जो भाता है वो ही देना भूल जाते! तो, बहुत साल तक तो मैंने ये तप किया! मैंने कहा, मनमें तो स्वाद की अभिलाषा है और बाहर-बाहर ये सब नाटक क्या करे? तो फिर इशारा शुरू कर दिया कि ये दो। निष्कुळानंदजी कहते हैं कि -

त्याग न टके रे वैराग विना, करीए कोटि उपाय जी;
अंतर ऊंडी इच्छा रहे, ते केम करीने तजाय जी.

और मैं आपसे एक करबद्ध प्रार्थना करूं बाप कि ये छोटी-सी सौ साल की जिंदगी में अध्यात्ममारग में गति करनी है तो प्लीज़, बुद्धिपूर्वक दंभ को हटाओ। दंभ हमारी आध्यात्मिक यात्रा की बहुत बड़ी बाधा है।

मेरी मूल बात तो ये है कि पुन्य के बारे में बुद्धपुरुषों ने अपनी-अपनी राय प्रदान की है। बुद्धपुरुष का व्यक्तित्व एक होता है, वक्तव्य बहुत होते हैं। किसी भी बुद्धपुरुष का एक ही प्रकार का वक्तव्य नहीं होगा। कभी भी ये मत सोचना कि लो ये आदमी तो बहुत बड़ा माना जाता था, लेकिन इसके सामने तो ये बोल रहे हैं! यहां तो ये बोल रहे हैं! वहां हम चूक कर रहे हैं। बुद्धपुरुष का व्यक्तित्व एक ही होता है, वक्तव्य मिनट-मिनट बदल सकता है। क्योंकि उनके सामने जो आता है उसके मुताबिक उनको बोलना पड़ता है। डोक्टर डायाबिटिस के मरीज़ को कहे कि तुम मिठाई मत खाना। और पंद्रह दिन के बाद डोक्टर को वो दिखाने जाये और उसी समय डोक्टर स्वयं अपने दवाखाने में मिठाई खाता हो तो मरीज़ का ये अधिकार नहीं है कि वो डोक्टर को डांटे कि आप मुझे मिठाई खाने की मना कर रहे हो और आप खुद मिठाई खा रहे हो? डोक्टर बीमार नहीं है, बीमार तू है प्यारे! उपाधिवालें को बिलग दबा दी जाती है। समाधिवाला वो ही वस्तु कर सकता है।

तो, प्रत्येक व्यक्ति प्रत्येक समय पर पुन्य की परिभाषा बिलग कर सकता है। बुद्ध के सामने ये बात आई कि तथागत, आपकी दृष्टि में पुन्य क्या है? तो बुद्ध कहते हैं, मेरी दृष्टि में पुन्य है सम्यक्ता। तुम सम्यक् रहो, न अधिक, न कम। इसीलिए तो बुद्ध का एक मार्ग है, मध्यममार्ग। मैं इससे ज्यादा सहमत हूं। शायद बुद्ध ने दूसरे भिख्खू के सामने पुन्य की दूसरी भी परिभाषा की हो। हो सकता है। कबीर को पूछा गया, आपकी दृष्टि में पुन्य की परिभाषा क्या है? एक ही बात कबीर कहते हैं-

कबीर कहे कमालकुं दो बातां सीख ले।
कर साहब की बंदगी भूखे को अन्न दे।

ये कबीर की पुन्य परिभाषा है। भगवान महावीर से कोई पूछे कि प्रभु! आपकी पुन्य की परिभाषा क्या है? मैंने पढ़ा नहीं है, लेकिन अपने ढंग से मैं कह रहा हूं कि शायद महावीर यही कहते कि अहिंसा के समान कोई ओर पुन्य नहीं है। और मुझे लगता है कि शायद यही ही जवाब हो सकता है महावीर की विचारधारा में कि अहिंसा पुन्य है।

कृष्णमूर्ति के सामने जब ये बात आई कि आपकी दृष्टि में सुक्रित क्या है? पुन्य क्या है? तो, मुझे बराबर स्मरण है कि कृष्णमूर्ति ने कहा था कि मेरी दृष्टि में पुन्य है अवेरनेस। और ये बिलकुल ठीक लगता है। कृष्णमूर्ति मानते हैं कि पूर्ण जागृति ही पुन्य है। शायद ओशो को कोई पूछे कि आपकी दृष्टि में पुन्य क्या है? तो वो कहेंगे कि ध्यान। शायद उसका जवाब ये हो सकता है। स्वामी शरणानंदजी को कोई पूछे कि आपकी दृष्टि में

पुन्य क्या है? तो वो कहेंगे कि मेरी दृष्टि में पुन्य यही है परस्पर संवेदना। एक-दूसरे के प्रति संवेदना ये पुन्य है ऐसा कह सकते हैं। अब आप मुझे पूछो; मैं पहले स्पष्टता कर दूं कि मैं ये श्रेणी में नहीं आता हूं। जिन बुद्धपुरुषों की मैंने चर्चा की वो आसमां के नक्षत्र है। लेकिन इनका पुन्यस्मरण मैं कर रहा हूं, उनके प्रति मेरा सद्भाव है। लेकिन यदि आप मुझे पूछे कि हम तो आपको सुन रहे हैं, आप बताईए कि पुन्य की आपकी परिभाषा क्या है? तो मैं कहूंगा कि मेरी परिभाषा-सत्य, प्रेम, करुणा। पुन्य क्या है, तो मैं कहूंगा कि सत्य ही पुन्य है। पुन्य क्या है, तो मोरारिबापू कहेंगे, प्रेम पुन्य है। पुन्य क्या है, तो मैं कहूंगा कि करुणा ये पुन्य है।

विवेकानंदजी ने, भारत के युवा संन्यासी ने विदेश घूम लिया। और फिर दक्षिणेश्वर में आकर ठाकुर से पूछते हैं कि मुझे लगता है कि आपके संन्यासी निष्क्रिय न हो, कुछ करे। प्रजा बहुत पीड़ित है, उसके लिए कुछ करना चाहिए। और उस शृंखला में ठाकुर को पूछा गया, आप किसको पुन्य कहते हैं? तब आंख में आंसू आ गये! मेरा पुन्य केवल माँ है। मेरी कालि मेरा पुन्य है। इसके अलावा मैं कोई पुन्य नहीं जानता। तो, ठाकुर का एकमात्र पुन्य था, माँ, माँ, माँ।

मैं 'रामचरित मानस' का मेरे दादाजी के चरणों में बैठकर प्रसाद प्राप्त करता था तब वो कोई न कोई संदर्भ में 'पार्वती मंगल' और 'जानकी मंगल' का संदर्भ डाल देते थे। जो दोनों तुलसी के छोटे-छोटे दो अन्य ग्रंथ है 'मानस' संबंधित। मैंने एक बार पूछ लिया कि दादा, मुझे थोड़ा जटिल पड़ता है 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल।' तो, 'रामचरित मानस' के साथ आप उसको क्यों जोड़ते हैं? तो उसने कहा, बेटा, रामकथा तो सीखो, गाओ, खूब बोलना। लेकिन कल्याण तो पार्वती और जानकी के सिवा कोई नहीं करेगा। ये माँ के सिवा कोई नहीं करेगा। इसलिए 'पार्वती मंगल', 'जानकी मंगल' को बिसरना मत। माँ है पुन्य, बाप है पुरुषार्थ। जो बच्चा किसी कारणवश अपनी माँ का अपराध करता है तो जीवंत पुन्य का अपराध कर रहा है। ठीक निर्णय किया मेरे देश के ऋषियोंने, 'मातृ देवो भव।' माँ को पहले पुकारा।

तो श्री हनुमानजी महाराज पुन्यपुंज, पुन्यराशि है। संख्या में उसको बांधना मुश्किल है कि कितने पुन्य है, लेकिन मेरी व्यासपीठ यहां ग्यारह प्रकार के पुन्य श्रीहनुमानजी के कहना चाहती है। पुन्य तीन प्रकार के होते हैं। कायिक, मानसिक और वाचिक। श्री हनुमानजी महाराज में तीन पुन्य वाचिक है। यद्यपि बहुत पुन्य है। लेकिन मैं केवल उनमें से ग्यारह चुन रहा हूं। और ग्यारह भी आपको ज्यादा लगे तो आप उसमें से कम कर सकते हैं। दो-पांच पुन्य समझ में आ जाये तो भी बहुत है। और ये पिटिपिटाई प्रलोभनवालें पुन्य की यहां चर्चा नहीं है। पुन्य मानी कोई परमशुभ। हम पुन्य का अर्थ करते हैं पुन्य मानी लाभ नहीं, शुभ।

श्री हनुमानजी महाराज के तीन कायिक पुन्य है। अब हनुमानजी का तो पूरा विहार पुन्यमय है। फिर भी तीन-तीन लें। शारीरिक कर्म जो हनुमानजी के तीन है वो बहुत बड़ा पुन्य है विश्व के लिए। एक, श्री हनुमानजी ने माँ जानकी की खोज की। उसमें उसने शरीर लगाया। श्री हनुमानजी महाराज का कायिक पुन्य था सीता की खोज में अपनी काया का पूर्णत: सदुपयोग। खुद खड़े हुए, विराट हो गए, झुके। सब शारीरिक प्रक्रिया है यहां। दूसरा कायिक पुन्य हनुमानजी का उसने सेतु निर्मित किया। और तीसरा श्री हनुमानजी ने शरीर से लंका के मैदान में युद्ध किया है। ये तीन कार्य जो हनुमानजी ने किया वो मेरी दृष्टि में कायिक पुन्य है।

हम राम की सेवा में रहना चाहते हैं मेरे युवान भाई-बहन, तो हम भी शरीर से ये तीन प्रकार के पुन्यकर्म करे। एक, पढ़कर, संशोधन करके, अभ्यास करके, अनुसंधान करके, डिग्रियां प्राप्त करके हमारी ऊर्जा क्या है? हमारी शक्ति क्या है? उसकी खोज करे। सीता मानी ऊर्जा। सीता मानी परमशक्ति, उसकी खोज की जाय कि कहां-कहां ये सब है? राम के प्रेमी होने के

लिए, राम की चाकरी करने के लिए केवल ज्ञानी ही होना पर्याप्त नहीं, विज्ञानी होना भी जरूरी है। वैज्ञानिक ढंग से कोई ऊर्जा की खोज करे तो ये शारीरिक पुन्य है। दूसरा, आज का युवान विघटनवादी न हो, सबको जोड़े। रामनाम से जोड़े, अल्लाह के नाम से जोड़े, या तो संवेदना से जोड़े। लेकिन सबको मिलाये अपने शरीर से तो ये शारीरिक पुन्य है। और जहां अभद्रता है, जहां कुछ आसुरीतत्त्व है, इस पूरी सृष्टि को कुरूप करने की वृत्तियां है, ऐसे परिबळों के सामने द्वेषमुक्त चित्त से यदि संघर्ष करना पड़े तो ये काया का पुन्य है।

तीन प्रकार के मानसिक पुन्य है। मानसिक पुन्य का मेरा मतलब शुभचिंतन, शुभविचार। जहां श्री हनुमानजी अपना विचार रखते हैं तो बहुत शुभ रखते हैं। इवन राम के सामने रखेंगे तो भी; सुग्रीव के सामने रखेंगे तो भी; विभीषण के सामने रखेंगे तो भी; रावण के सामने रखेंगे तो भी। जहां भी हो, हनुमानजी का चिंतन अत्यंत शुभरूप में आया है। सुग्रीव को भगवान के सामने पेश करते हैं कि महाराज, पर्वत पर सुग्रीव रहता है। आपका सेवक बनेगा। प्रभु, आप उसको अपना बनाओ। वो ही हनुमानजी विभीषण को शरणागत होने में भी अपने शुभ विचारों से बल देते हैं। वो ही हनुमानजी माँ जानकीजी जब दु:खी हो जाती है, मृत्यु तक का निर्णय लेने के लिए मजबूर हो जाती है तब माँ को जीवनदान मिल जाय ऐसे सुंदर विचार प्रस्तुत कर देते हैं।

तो, श्री हनुमानजी महाराज का शारीरिक कर्म पुन्य है। वैचारिक स्थिति पुन्यमयी है और तीसरा क्षेत्र वाचिक, हनुमानजी जो बोलते हैं! उसमें तो वाल्मीकि का ही संदर्भ लेना पड़ेगा कि वाल्मीकि के हनुमान जब राम से पहले मिलते हैं और रामजी से जब वार्तालाप होता है तब भगवान इतने प्रभावित हो जाते हैं हनुमान की बातचीत से और लक्ष्मण से कहते हैं कि लक्ष्मण, इस आदमी ने बहुत अध्ययन किया है। ये आदमी व्याकरण, वेद, शास्त्र सबका पारंगत है। उसके बिना इतनी वाक्शुद्धि नहीं होती। ये पंडितों का पंडित है। आदमी तीन प्रकार की बानी बोले वो पुन्य है। एक तो वाचिक रूप में सत्य बोले। मैं बोल जाउं ये सरल है, आप सुनो ये सरल है। लेकिन सत्य बोलने की बात आती है तब हम सब जानते हैं कि कितनी मुश्किल है! तो, जिसकी बानी में सत्य है, उनकी बानी पुन्य है। लेकिन हमारे यहां कहा गया, 'सत्यं ब्रूयात्, प्रियं ब्रूयात्।' सत्य बोले, लेकिन प्रिय सत्य बोले, कटु सत्य नहीं। सत्य बोलना ये पुन्य है हनुमान का। और प्रिय सत्य बोलना ये हनुमानजी का दूसरा पुन्य है। और हितकारी सत्य बोलना। ऐसा सत्य कि जिसमें दूसरों का शुभ ही होता है। सत्य हो, प्रिय हो, हितकारी हो। ये तीन प्रकार का सत्य, वाचिक पुन्य मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में हनुमान का है।

पुन्य दूसरा; देहशुद्धि पुन्य है। शरीर को विशुद्ध रखना, देह को पवित्र रखना ये पुन्य है। और दूसरा दिमाग शुद्ध रखना ये पुन्य है। हनुमानजी में दोनों है। देह शुद्ध और दिमाग शुद्ध है। दिल तो शुद्ध है ही।

जासु हृदय आगार बसहिं राम सर चाप धर।

मैं आप-से इतना ही कहूं कि हनुमानजी का शरीर सोने का है न? सोना कीचड़ में पड़ा तो भी शुद्ध है। 'अतुलितबलधामं हेमशैलाभदेहं'; और सोने को हमने सदैव शुद्ध माना है। व्यापारी उसको अशुद्ध कर दे, बात ओर है! सोना पवित्र है। श्री हनुमानजी महाराज देहशुद्ध है। इन्द्रियों से तो शुद्ध है ही। स्वर्ण के नाते दिमाग और देह दोनों शुद्ध है। ये देह की शुद्धि मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में पुन्य है। आप नहा-धोके अपने शरीर को शुद्ध रखो, ठीक रखो ये पुन्य है।

युवान भाई-बहन, ये कथा इसी दृष्टि से कही जा रही है कि इन ग्यारह में से जितने भी पुन्य हम ग्रहण कर सके, राम की सेवा के अधिकारी हो जायेंगे। राम की सेवा मानी परम की सेवा, परमात्मा की सेवा के अधिकारी हो जायेंगे। समष्टि की सेवा में, ये पूरी सृष्टि की सेवा में हम उपयोग में आ सकेंगे।

तो, पुन्यपुंज श्री हनुमानजी महाराज है और दूसरी पंक्ति में तुलसी कहते हैं कि 'पुन्यपुंज बिनु मिलहिं

न संता।' जब तक हमारे पुन्य का समूह इकठ्ठा नहीं होगा तब तक कोई संत नहीं मिलेगा। और जब तक संत नहीं मिलेगा तब तक ये संसार जो दु:खमय दिखता है, महसूस करते हैं वो ठीक से समझ में नहीं आयेगा। अथवा तो संसार की दु:खमयता का अंत नहीं होगा।

मैं बार-बार कहता हूं, भगवान तथागत बुद्ध ने चार आर्यसत्य जो कहे कि 'दु:ख है, दु:ख के कारण है, दु:ख से निवृत्ति भी है।' आदि-आदि जो पूरी दु:खवादी विचारधारा है। भगवान बुद्ध यद्यपि बोले हैं। भगवान कृष्ण भी इसको दु:खालय कह रहे हैं। संसारसागर खारा है ये बस! ऐसी बातें मैं सुनता रहा हूं। और है भी। लेकिन खबर नहीं, एक प्रकार की धून सवार है कि इन सभी सूत्रों में संशोधन होना चाहिए। तथागत बुद्ध को बार-बार प्रणाम करके मैं कहूंगा, दु:ख और सुख यदि सापेक्ष है तो फिर सुख की ओर चिंतन क्यों न हो? दु:ख है। माना, जरूर। कहां बुद्ध, कहां हम? लेकिन उनके हैं, उनकी परंपरा में है, उनके बच्चें हैं। छोटा बच्चा बाप की गोद में बैठकर बाप की दाढी खींच सकता है! बाप को घोडा भी बना सकता है! और बाप के कंधे पर बैठे तो शायद बाप से ज्यादा दूर की देख भी सकता है। और इसमें बाप राजी होता है।

तो, मुझे ऐसा लग रहा है। एक-दो बौद्ध भिख्खूओं से जरा बातें भी हुई है। एक थोड़े खुश भी हुए हैं, एक थोड़े नाराज़ भी हुए हैं! लेकिन ये तो होता रहता है। कोई बात अपनी पेश करे तो ये भाव-प्रतिभाव तो होगा ही। एक ने पत्र लिखा कि आप तथागत बुद्ध के शब्दों को...! अरे, मैंने मन में कहा कि तुमको बुद्ध के प्रति आदर होगा, इससे हजार गुना आदर मेरा है बुद्ध के प्रति। लेकिन मेरे, मेरे विचार है। दु:ख है। मुझे कहना है, यहां सुख भी है। यहां लाठी भी है। यहां वायोलिन भी है; सुख क्यों नहीं है यहां? यहां जिस बोली से आप किसीको गालीगलोच कर सकते हैं, ये बोली नवकारमंत्र भी बोल सकती है, धम्मपद का उच्चारण कर सकती है। कितना सुंदर जगत है! सुख है। लेकिन आदत-सी हो गई है! हमको बहुत पहले से सिखाया गया, यहां दु:ख ही है! मैं सिद्ध करने की चेष्टा में नहीं हूं, शास्त्रार्थ करने में नहीं हूं। लेकिन मुझे महसूस होता है कि यहां सुख भी है। गुरुनानक ने तो खुल के गाया -

सुख पाया, सुख पाया, रहम तेरी, सुख पाया।

तो, सुख है। और सुख के कारण भी है। जैसे दु:ख के कारण है तो सुख के कारण भी है। अच्छी सोच, अच्छी दृष्टि, अच्छी गति-प्रवृत्ति कारण है सुख का। और अतिशय सुख हो जाय तो हमारी परंपरा मैं तो सुख से निवृत्ति भी है। तो क्या दु:ख यार! कभी-कभी तो लगता है, अभाव में जीने के गोल्डन डेझ थे सब! सुख है यहां! सोच बदलो। तुम जुवानी में हरिनाम जपते हो। सुख के कारण है तुम्हारे पास। तुम 'मानस' का 'भगवद्गीता' का पाठ करते हो, तुम साहित्य पढ़ते हो। कारण है हमारे पास सुख का। सुखी होना हमारा अधिकार है। बाकी तो आदत-सी हो जाती है तो क्या करे! गुजराती में हमारे एक कवि हुए है। नाम था कैलास पंडित। उनकी बड़ी प्रसिद्ध गज़ल है -

दर्दने गाया विना रोया करो.
प्रेममां जे थाय ते जोया करो.

और आपने कभी ये महसूस नहीं किया है कि कभी-कभी रोना भी सुख है? आप अपने इष्टदेव को याद करते हैं, आंख में आंसू है तो ये आंसू कितने सुखद है! मुस्कुराहट ही सुख है ऐसा नहीं, आंसू भी सुख है।

तो, कुछ ऐसे पुन्य हमारे अर्जित हो जाये तो तुलसी कहते हैं कि संत मिल जाये। और ऐसा कोई संत मिल जाये जो दृष्टिकोण बदल दे, जो संशोधित कर दे हमारी कुछ पिटिपिटाई बातों को। संत परिवर्तन कर देता है दृष्टि में। मध्ययुग में ऐसे पांच संत आये जिन्होंने ये सब दु:खमय है, पीड़ामय है, उसकी बातों को बदला। मध्ययुग में ये पांच सितारें जो हमारे पास है, जिन्होंने कई प्रकार के संशोधन पेश किए। इनमें पहला पुन्य स्मरण मैं करना चाहूंगा, कबीर। दूसरे, सुरदास। यद्यपि ये शरणागति और प्रेमपथ के महात्मा थे। लेकिन सुरदास ने भी संतत्व अर्जित करके बहुत क्रांतिकारी काम कर दिया। और इधर पंजाब की ओर जाऊं तो गुरु नानकदेव। बहुत दृष्टि दी। पूरा माहौल बदल दिया इस महापुरुष ने। एक ओर संत मेरे सामने आते हैं और वो है रैदास। अद्‌भुत काम किया! कहते हैं, मीरां ने वहीं से दीक्षा पाई। जो हो; ये विवाद है, इसीलिए मैं इसमें जाऊं भी ना। तो, मीरां एक ऐसी संत जिसने संसृति का अंत कर दिया। और इस महिला ने दुनिया के सामने नृत्य करना शुरू कर दिया। घुंघरू बांध लिए। और जिसका नाम मेरे लिए तो क्या नहीं है? गोस्वामी तुलसी। ये सब संत है जिन्होंने बहुत संशोधन किया। इन मध्ययुगीन संतों ने बहुत काम किया। ऐसा संत कोई मिल जाय तो ये संसार जो लगता है दु:खमय है उसका अंत हो जाय। लेकिन ऐसा संत मिलेगा कैसे? तुलसी कहते हैं -

पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता ।
सतसंगति संसृति कर अंता ।।

'भिक्षा' शब्द बड़ा पवित्र है। भीख बिलग वस्तु है। दो वस्तु समझे बाप, भिक्षा आदर के साथ देनेवाला पुन्य कर रहा है और आदर के साथ दी गई भिक्षा इतनी ही उदारता से प्राप्त करके मुस्कुराते हुए पा लेना वो भी पुन्य है। भिक्षा में देनेवाला भी पुन्य कर रहा है, भिक्षा में भिक्षा जो प्राप्त करता है वो भी पुन्य कर रहा है। इसीलिए संन्यासी भिक्षा करते हैं। लेकिन भिक्षा में नियम ऐसा है कि पात्र में जो दिया जाय वो आदर के साथ ले लेना, तो ही पुन्य। आप पहले कहलवा दे कि आज मैं भिक्षा लेने आउंगा और पुरणपोळी देना! तो ये तुमने रेस्टोरन्ट में ओर्डर दिया है! ये तुम भिक्षा लेने नहीं गये हो!

तो, बहुत पुन्य यदि हमारे इकठ्ठे हो जाय तो कोई संत मिले और ऐसा संत हमारी संसार की दु:खमय बातों को नष्ट करके आनंद की ओर हमें मोड़ दे। हमें एक बिलग दुनिया का दर्शन कराये।

कथा के क्रम में कल हनुमानजी तक की हमने वंदना की थी। फिर सीता-राम की वंदना गोस्वामीजी ने क्रम में की। उसके बाद रामनाम महाराज की वंदना तुलसीदास ने की। लेकिन यहां रामनाम की ही वंदना है ऐसा नहीं है। जिसका जो इष्ट हो, जिसका जो प्रिय नाम हो उसकी महिमा यहां है। कुल मिलाकर मेरे भाई-बहन, आप जिस इष्टदेव के आराधक हो, आपके गुरु ने जो मंत्र अथवा तो नाम दिया हो उसी नाम को जपो। हरिनाम-परमात्मा का नाम ये सभी शास्त्रों का सार है।

मेरे युवान भाई-बहन, नाम ग्रहण करना। और एक बार नाम ग्रहण कर लो, कोई मंत्र ग्रहण कर लो, फिर दूसरे नाम, दूसरे मंत्र की आलोचना मत करना। और कोई ऐसे महापुरुष आपको नाम देकर ये कहे कि 'ये नाम ही श्रेष्ठ है, बाकी सब नाम बेकार है!' ऐसे महापुरुष को हजार रूपया या ग्यारह सौ रूपिया उनके चरण में रखकर निकल जाना! जो तुम्हें भेद पैदा कराये! सनातन धर्म वटवृक्ष है। ये गलत प्रचार के एक-दूसरे को तोड़ने की जो बदबू भरी प्रवृत्ति जो है उसको लोग धर्म कहने लगे हैं! धर्म ऐसा होता है? धर्म तो जीव को मुक्तता प्रदान करता है। मेरी व्यासपीठ ने कभी नहीं कहा कि तुम 'राम' ही बोलो। तुम 'कृष्ण' ही बोलो। अरे, 'अल्लाह' तक मैं कहता हूं! 'खुदा' बोलो, 'जिसस' बोलो, मुझे क्या फ़र्क पड़ता है? सब उनके नाम है। जहां आपकी रुचि है। तो प्रभु के नाम की महिमा बहुत है। हरिनाम जपो। राम, कृष्ण, शिव, दुर्गा, बुद्ध भगवान, महावीर भगवान, जो जपो। जब समय मिले अपना काम करते ओफिस, दफ्तर, पढ़ाई, स्वाध्याय, खेलना सब करते-करते जब थोड़ा समय मिले तो प्रभु का नाम जपना। ये कलियुग की प्रधान साधना है।

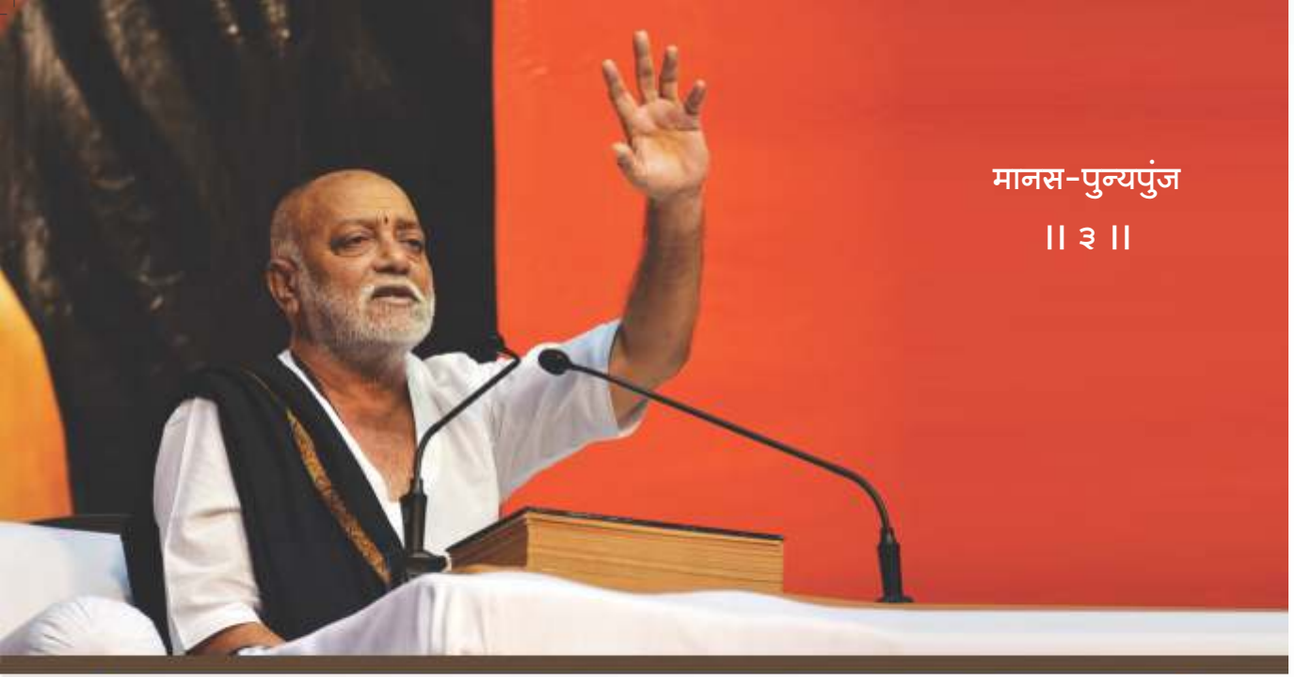

आज एक 'धर्म स्वच्छता अभियान' भी होना चाहिए

'मानस-पुन्यपुंज', जिसके बारे में कल कुछ आप से बातचीत हुई। श्री हनुमानजी महाराज पुन्यपुंज है इसीलिए अयोध्या में नित्य निवास करते हैं और राम की सेवा में लगे रहते हैं। उसकी कुछ चर्चा कल हमनें की। दूसरी पंक्ति, 'पुन्य पुंज बिनु मिलहिं न संता।' पुन्य समूह के बिना कोई संत नहीं मिल सकता। यद्यपि 'रामचरित मानस' में लिखा है कि भगवान की कृपा बिना संत नहीं मिलता। ऐसा भी पाठ है-

अब मोहि भा भरोस हनुमंता ।
बिनु हरिकृपा मिलहिं न संता ।।

ये एक दूसरा पक्ष है। 'विनयपत्रिका' में ये भी आया कि-

जब द्रवै दीनदयालु राघव, साधु-संगति पाइये ।

जब परमात्मा की कृपा द्रवीभूत हो जाय तब किसी साधु की संगति मिल सकती है। कई प्रकार से साधु संग के बारे में संकेत मिलते हैं। यहां कौन से ऐसे पुन्य हमारे पास इकठ्ठे हो तो हमें संत मिले? और पहले स्पष्टता तो ये कि संत की क्या जरूरत है जीवन में? क्यों संत की इतनी बड़ी महिमा गाई जा रही है? तो इसकी कल थोड़ी आप से बात कर चुका कि संत इसीलिए आवश्यक है कि संसार की भयानकता के बारे में हमें बहुत-बहुत सुना-सुनाकर भयभीत कर दिया गया है! कोई ऐसा संत मिले जो हमें इस भय से मुक्त कर दे।

सत संगति संसृति कर संता ।

हमारा हेतु तो नाशवंत हेतु है, कोई साधु मिल जाय तो प्रतिष्ठा मिल जाय! कोई साधु के संग हमारा संबंध हो जाय तो लोग हमें पूछते-पूछते आये! कोई साधु मिल जाय तो प्राईवेट प्रेक्टिस भी अच्छी चले! मेरी इस पचपन साल की यात्रा में मैं ये बहुत कुछ देख चुका हूं कि बहुत कुछ हो सकता है! तत्त्वत: संत की जरूरत किस लिए है हमारे जीवन में? क्यों खोजते हैं हम संत को? और उसके लिए तुलसी ने शर्त लगा दी कि पुन्यपुंज हो तब ही मिलेगा।

तो, यहां बहुत स्पष्ट है और ये मेरे स्वभाव में बहुत अनुकूल पड़ रहा है। जगत से जो हमें इ़रा दिया गया है, ये भवसागर खारा है, ये भवबंधन है, यहां दु:ख के सिवा कुछ नहीं है! ये जो कुछ बातें स्थापित हितों की तरह स्थापित हो चुकी है; मुझे लगता है, संत की इसीलिए जरूरत है कि इन भ्रांतिओं का अंत ला दे। और युवान भाई-बहनों, ऐसे संत की तलाश में रहीयेगा कि जो इन भ्रांतिओं का नाश करे। छोटी-छोटी बाबतों में आप को प्रलोभन दे कि आप इतना करो तो तुम्हारा काम हो जायेगा! तुम्हारे पर कृपा शुरू हो जायेगी! तुम्हारा धंधा शुरू हो जायेगा! छोटी-छोटी बातों में तथाकथित संतों ने भी हम को कितना भ्रमित किया है! धर्म के नाम पर समाज को अत्यंत भ्रमित किया जाय उसके लिए एक कानून बनना चाहिए कि जिसमें कड़ी से कड़ी सजा का विधान हो। ये मैं बहुत गंभीरता से बोल रहा हूं।

आज मेरे पास कुछ प्रश्न भी है। 'बापू, एवुं जाणवा मळ्युं छे के हनुमानजी महाराज ने गायत्री मंत्र बहु प्रिय छे। तो 'हनुमानचालीसा' ना अंते गायत्रीमंत्रनुं पठन करी हनुमानजीनो राजीपो प्राप्त करी शकाय? अभिप्राय आपशो।' अब हनुमानजी को गायत्रीमंत्र अत्यंत प्रिय है ऐसा मैंने कहीं पढ़ा नहीं है, न मैंने किसीसे सुना है! आज पहली बार गुजराती से सुना है, पढ़ा है! और 'हनुमानचालीसा' के बाद 'गायत्रीचालीसा' का पठन करने से हनुमानजीनो राजीपो ज्यादा प्राप्त करी शकाय? ऐसा प्रश्न है। करके देखो! मुझे पूछने की जरूरत नहीं है। बाकी, हनुमानजी को गायत्री मंत्र अत्यंत प्रिय है? ऐसा पूछा है। हो सकता है। हनुमानजी सूर्यशिष्य है। और गायत्रीमंत्र प्रकाश का संकेत है। तो हनुमानजी को गायत्रीमंत्र पसंद हो इसमें कोई आपत्ति नहीं होनी चाहिए। हो, लेकिन मेरी जानकारी में ऐसी कोई बात नहीं है।

दूसरा प्रश्न मैंने इसीलिए रखा है कि एक संप्रदाय का नाम इसमें लिखा है, मैं नहीं बोलूंगा; उसमें उसके धर्मग्रंथ में लिखा है कि बहनों को मिलना नहीं, उसका चेहरा देखना नहीं और इसीलिए ऐसे लोग बहनों के संग योग्य वर्तन नहीं कर रहे हैं, तो वो योग्य है? छ महिनानी बाळकीने पण अमुक धर्मवाळा माणसो एनी सामे जोता नथी तो ए बधुं बराबर कहेवाय? मारे तो एटलुं ज कहेवानुं के जेनी जे विचारधारा होय एने प्रणाम! कोईनी आलोचनामां आपणे जावुं नथी। पण तमने आवो प्रश्न उठे के अमुक लोको बहेनोने मळतां नथी अने बहेनोनी साथे सरखुं वर्तन करतां नथी तो तमे गांडा थईने त्यां जाव छो शुं काम? अब किसीका ऐसा व्रत हो कि हम बहनों को न मिले, बहनों को न दिखे, तो उसका व्रतभंग हो इसीलिए हमें ऐसा प्रयत्न करने की जरूरत क्यों? हम क्यों जाय वहां? नहीं जाना चाहिए। एक तो आप को जाना है, अपमान सहन करना है, फ़िर मोरारिबापू को पूछना है! मैं कोई आलोचना में जाना नहीं चाहता, मुझे समझना। छ: महिने की बच्ची के सामने भी न देखे और ये आप को अच्छा न लगता हो तो-

मुझ को इस राह पे चलना ही नहीं।
जो मुझे तुझ से जुदा करती है।

परवीन शाकिर का शे'र है। एक ओर से आलोचना करना! एक ओर से ये करना! ये प्रश्न मुझे पूछने की कोई जरूरत नहीं है। जहां ऐसा आप को लगता हो उसको पूछो! वर्ना किसीके व्रत टूटे उसमें हम जाकर क्यों व्रतभंग करे? नहीं जाना चाहिए। सीधी-सी बात है। और ऐसी बातें जो मानते होंगे अपने-अपने विचारों में तो वो भी तो कोई माता के उदर से तो जन्में हैं। माँ की गोद में ही बड़े हुए होंगे। माता ने ही उनको नहलाये-धूलाये होंगे। खुद के दूध पिलाये होंगे। बड़े बनाये होंगे। फ़िर वो इतने बड़े हो गये होंगे! जो हो! सनातन धर्म के बारे में मैं इतना ही कहूं कि जगद्गुरु शंकराचार्य दंडी संन्यासी लेकिन संन्यास लेने के समय माँ को बचन दिया था कि माँ, तेरे आख़िरी समय में मैं आउंगा। भले संन्यास नियम का भंग हो। संन्यास जगत में आलोचना हुई, नियमभंग भी हुआ तो भी माँ का अग्निसंस्कार करने के लिए युवक शंकर गये थे। और आज वो शंकर, शंकर के अवतार के रूप में हमारे हृदय में स्थापित है।

तो, मेरा कहना है कि मुझे और आप को ऐसे संत की जरूरत है जो इन भ्रांतिओं से हमें जल्द से जल्द मुक्त करे। अब बहुत देर हो गई! इक्कीसवीं सदी है। धर्म बहुत सरल है साहब! धर्म जितनी कोई सरल चीज़ नहीं है लेकिन तथाकथित लोगों ने उसको इतना जटिल-कठिन कर दिया है। मैं कल आप से कह रहा था किसी न किसी महापुरुष की पुन्य की व्याख्या। दो रह गई मेरे से। रमण महर्षि को किसीने पूछा, आप के मन में पुन्य की परिभाषा क्या है? रमण ने कहा, चित्तशुद्धि। तुम्हारा चित्त शुद्ध हो जाय इससे बड़ा कोई पुन्य नहीं है, बस। अध्यात्म तो ये है। गुरुवर रवीन्द्रनाथ टागोर को जब क्षितिमोहनसेनसाब ने पूछा कि आप पुन्य के बारे में कुछ बातें करेंगे? बोले, इसके बारे में मैंने कुछ सोचा नहीं है। लेकिन मुझे यदि आप 'पुन्य' शब्द के साथ जोड़ना चाहते हैं तो मैं कहता हूं, मेरी दृष्टि में 'सत्यम् शिवम् सुंदरम्', ये पुन्य है। मैं तो आप से कहूं, दूसरों के पुन्य को आदर्श मत बनाओ। आप अपना पुन्य खोजो।

मेरे बारे में भी कई लोग कहते हैं कि बापू का पैर मत छूना, वर्ना बापू को उपवास पड़े! मैं उपवास करता नहीं हूं! लेकिन मुझे कोई पैर छूए ये मेरे स्वभाव में मुझे ठीक नहीं लग रहा है। मेरे पैर छूने से क्या है? शिस्त से आदर से आप खड़े रहो तो मैं आप को देखूं, आप मुझे देखो। कोई पैर छूए तो उपवास हो ऐसा कोई मेरा व्रत नहीं है। ये दुनिया बहुत अफवा फैला-फैलाकर ऐसा कर देती है! धर्म के नाम पर बहुत चला है! 'धर्म स्वच्छता अभियान' चलना चाहिए। ये बहुत आवश्यक है। 'भारत स्वच्छता अभियान' तो अपने देश की वर्तमान सरकार ने अच्छा आयोजन किया है। होना चाहिए। लेकिन आज एक 'धर्म स्वच्छता अभियान' भी होना चाहिए।

भगवान श्रीकृष्ण ने हम को क्या कहा? 'तू चिंता छोड, मैं तेरा सब करूंगा, तू चिंता छोड़।' 'भगवद्गीता' में तो भगवान कृष्ण ने कहा है, 'धर्मसंस्थापनार्थाय।' लेकिन कल मैं लक्ष्मणा का संकेत आप के सामने रख गया था। लक्ष्मणा ने एक ऐसा प्रश्न पूछा है, वयोवृद्ध श्वशुर है, सौ साल के उपर उम्र है और लक्ष्मणा उसकी सेवा में अनवरत लगी हुई है। तब लक्ष्मणा के सामने कृष्ण ने ऐसा कहा कि बेटी, ये तो मैंने अर्जुन के सामने कहा, मैं धर्म संस्थापन के लिए बार-बार आता हूं। धर्म संस्थापन बार-बार करना नहीं पड़ता बेटी! देखिए, कृष्ण बिलकुल विपरीत निवेदन करते हैं! धर्म कोई चीलाचालु वस्तु नहीं है कि उसको बार-बार प्रतिष्ठित करनी पड़े! आकाश को कलर नहीं करना पड़ता है। युग बीत गये। उसका जो रंग है वो है। रिनोवेशन की जरूरत नहीं रहती। ये शाश्वत है, नितनूतन है। लक्ष्मणा के प्रश्न के उत्तर में कृष्ण ने कहा, वहां तो मुझे खास निर्णय लेना था देश-काल के अनुसार लेकिन बेटी, मैं जगत में बार-बार आता हूं। धर्म में जो अशुद्धियां आ गई है इन अशुद्धिओं को मिटाने के लिए आता हूं। हम इसीलिए सत्संग करे कि कम से कम हमारे अंदर कुछ ऐसी अशुद्धियां आये तो मिटे। कितनी भ्रांतियां आई है?

मेरे भाई-बहन, हमें भय से मुक्त करे वो साधु। हमें प्रलोभनों से मुक्त करे वो साधु। हम किसीके आरोपित प्रभाव में आ गये हो ऐसे प्रभाव के पर्दे को हटाकर हमें हमारे स्वभाव में स्थिर करे वो साधु। ऐसा साधु कोई चाहिए। कितना बड़ा पवित्र ये स्थान है संत का! गुजराती में तो लिखा है-

नथी मफतमां मळतां, एनां मूल चुकववा पडतां,
संत ने संतपणां नथी मफतमां मळतां।

आप लोग भी क्या करते हैं? किसी साधु के बारे में वाया-वाया पूछताछ बहुत करते हैं! इसीलिए तुम भयभीत हो जाते हो कि व्यवस्था करने में क्या करना पड़ेगा? क्या करना होगा? मुझे डोक्टर आज सुबह पूछ रहे थे, सब व्यवस्था तो ठीक है न? कोई कमी तो नहीं है? अरे, मैंने कहा, ज्यादा है! बहुत ज्यादा सुविधा है! मैं आप से एक प्रार्थना करूं मेरे श्रोता भाई-बहन, आप इतने समय से मेरे साथ चल रहे हैं फ़िर भी कुछ न कुछ भ्रांतियां आप के मन में रह जाती है। मेरे पास ड़रना मत। मेरे सामने सामने बात कर लेना। मेरी कोई जरूरत नहीं है यार! अक्सर आज कितना समय हो गया, मैं जमीन पर सोता हूं, बेड पर नहीं सोता हूं। मैं दिल से बात करता हूं।

लेकिन लोग बहुत वो कर देते हैं, ये करो, ये करो! सहज जीओ बाप! जीवन में स्वाभाविक और सहज जीना ये पुन्य है। आदमी स्वभाव में जीए। क्यों आदमी को विकृत किया जाता है? भ्रांतिओं से समाज मुक्त हो। ऐसा संत हमें मिले जो हमारी इन भ्रांतिओं को मिटायें, नितांत समाप्त कर दे। तो ऐसे कौन पुन्य हम करे कि ऐसा कोई साधु मिले, जो हमारा बोज़ न बने। कौन पुन्य से संत मिले? तुलसीदासजी कहते हैं-

पुन्य एक जग महुँ नहिं दूजा।
मन क्रम बचन बिप्र पद पूजा।।

संसार की भ्रांतिओं का अंत कर दे ऐसा संत मिलता है पुन्य के समूह से। और ऐसा एकमात्र पुन्य है युवान भाई-बहन, दूसरा है ही नहीं, बिलकुल निषेध कर रहे हैं। मन, बचन और कर्म से विप्र के पद की पूजा करना। ये एकमात्र पुन्यपुंज बन जायेगा। और संत मिल जायेगा। अब यहां वर्णाश्रमवादी लोग ऐसा अर्थ करेंगे कि विप्र यानी ब्राह्मण। यद्यपि ब्राह्मण वर्णों में पूज्य है। इसका निरादर हम न करे। 'विप्र' शब्द की परिभाषा मेरी व्यासपीठ ने मेरी जवाबदारी के साथ बहुत बार आप के सामने रखी है। विप्र मानी क्या? विप्र का अर्थ ब्राह्मण तो हो ही सकता है, यस। लेकिन केवल वर्णपरक ही अर्थ नहीं होना चाहिए। विप्र का अर्थ है जिसमें विवेक की प्रधानता हो। 'वि' मानी विवेक; 'प्र' मानी प्रधानता। जिस व्यक्ति में विवेक प्रधान हो उसको विप्र कहे। दूसरी व्याख्या मेरी व्यासपीठ ने की थी 'वि' का एक अर्थ होता है 'विगत' और 'प्र' का एक अर्थ होता है 'प्रपंच।' जिसको कोई भ्रांति नहीं, प्रपंच से जो विगत हो। और विशेष रूप में जिसकी प्रज्ञा काम करती हो ये तीसरा अर्थ। ये तीन ही अर्थ आप के सामने रखना है।

युवान भाई-बहन, विप्र मानी ब्राह्मण अर्थ तो है ही। ब्राह्मण का अनादर मत करना। ब्राह्मण, ब्राह्मणत्व में न रहे तो ये उनकी जिम्मेवारी है! लेकिन हम आदर करे। लेकिन सही में विप्र का अर्थ तो इतनी विशाल दृष्टि से व्यासपीठ यही करना चाहती है। तीन ही लक्षण। जिसमें विवेक की प्रधानता हो। जो प्रपंच यानी सांसारिकता से विमुक्त हो और तीसरा, जिसकी प्रज्ञा विशेष प्रकार से काम करती हो दुनिया के रहस्यों को खोलने के लिए। उसका नाम विप्र। ऐसी व्यक्ति, उनके चरण में मन, वचन और कर्म से पूजा करना ये पुन्य है। अब शब्द है 'पद।' 'पद' के दो अर्थ होते हैं। पद मानी पग; पद मानी 'पदवचन प्रमाण।' उनके मुख से विवेक से निकला वचन; उनके मुख से इस संसृति का निषेध करते हुए मायावी संदर्भों से मुक्त निकला हुआ वचन; उनके मुख से विशेष प्रज्ञा से निकला हुआ वचन। ऐसे वचनों को, ऐसे पदों को, ऐसे वाक्यों को मन, वचन, कर्म से उनका अनुसरण करना ये है विप्रपूजा और ये है एकमात्र पुन्य। कितनी भ्रांति मिट जायेगी! बहुत-सी संसृति का अंत हो जायेगा। तो ऐसे महापुरुषों के वचन में आदर रखना। मन से भी उसको मानना। वाणी से भी इसके सत्य को कुबूल करना, स्वीकारना। और कर्म से-काया से उनका अनुगमन करना कि हम भी इस मारग पर चले। उसको तुलसी पुन्य कहते हैं।

अब, एक पुन्य में से मुझे पांच पुन्य कहने हैं आप को। ये 'पुंज' है ना, उसको पंज' समझ लो। और हमारे यहां 'पंच त्यां परमेश्वर' माना जाता है। पंच की महिमा है। मेरे भाई-बहन, एक पुन्य है संत को पाने का, श्रम करो। श्रम करना पुन्य है। आदमी को श्रम करना चाहिए। आप को लगेगा कि श्रम पुन्य है? हां। जिन्होंने संत को पाया है, पहले श्रम किया है। यहां श्रम यानी जो अपना कार्यक्षेत्र है उसमें प्रामाणिकता से जितना समय हमें श्रम करना है इतना श्रमदान करना ये पुन्य है। मेरा काम है कि मुझे यहां तीन-साड़े तीन घंटे बोलना है। मैं प्रामाणिकता से यहां ये काम कर रहा हूं। ये मेरा पुन्य है। ये श्रम है। हमारे हर्ष ब्रह्मभट्टसाहब, उर्दू पर भी उसका हाथ है, उसका एक शे'र है गुजराती में-

श्रम करो ओ संतजी, आश्रम नहीं।

याद रखना, पहला पुन्य है श्रम करना। हमें सिखाया गया दान करो, ये पुन्य। यज्ञ करो ये पुन्य। परोपकार करो, पुन्य। सब पुन्य है अवश्य। लेकिन संसृति की भ्रांति को मिटानेवाले संत को प्राप्त करना है तो

पहला पुन्य है श्रम करो। कहीं भी आप की ड्यूटी हो, आप अपना दायित्व ईमानदारी से निभाओ। तुम्हारे लिए जो कार्य प्राप्त निश्चित है वो श्रम करो ये पुन्य है साधु को प्राप्त करने का। मेरे पास लोग आते हैं बापू, बेरखो आपो। तो मांगे तो मैं देता हूं लेकिन मैं कहता हूं कि इसका मतलब ये नहीं कि तू पढ़ाई छोड़ दे, तू खेलना छोड़ दे! सतत बेरखा लेकर आप बैठ जाओ ये ठीक नहीं है। श्रम करो ये पुन्य है। एक ऐसा पात्र 'मानस' में है कि ड्यूटी लगी है, श्रम करता है ये पात्र और उसीके कारण उसको संत मिला है।

तात मोर अति पुन्य बहूता ।
देखेउँ नयन राम कर दूता ।।

रावण की नगरी में एक सुरक्षा कर्मी है ये महिला। क्षेत्र लंका है। जब हनुमानजी महाराज छोटा-सा रूप लेकर लंका में प्रवेश करने गये तो इस छोटे-से रूपवाले हनुमानजी को भी लंकिनी ने रोक लिया! उसने अपनी ड्यूटी अदा की। ये पुन्य है। और मेरी दृष्टि में ईमानदारी से किया गया श्रम ये पुन्य है और पुन्य से संत मिलता है। तो यहां सिद्ध हो जाता है 'देखेउँ नयन राम कर दूता।' मुझे राम का दूत मिल गया। मुझे संत के दर्शन हो गए क्योंकि मैंने मेरी ड्यूटी की।

दूसरा पुन्य, विश्राम करो। विश्राम पुन्य है। 'भगवद्गीता' में लिखा है, अतिशय कर्म करनेवाला, अतिशय जागनेवाला योग में सफल नहीं हो सकता। हम को सीखा दिया कि वहां काम करो, काम करो, काम करो! विश्राम भी जरूरी है। तुम तुम्हारे देह पर कृपा करो। मैं विश्राम को पुन्य कह रहा हूं। याद रखना, विश्राम से संत मिलेगा। श्रम से मिलेगा। पार्वती को श्रम से मिला। बहुत तप किया। सप्तऋषि मिल गये। विश्राम से भी संत मिलता है। लंका की ओर हनुमानजी गति करते हैं तो मैनाक पर्वत समुद्र के तले में विश्राम कर रहा है। मैनाक पर्वत को पांखें भी है, आप जानते हैं। पहले पहाड़ों को पांखें थी! ये बड़े सुंदर रूपक है। लोग बड़े होते हैं न तो पंख आ ही जाते हैं। उड़-उड़ करने लगते हैं! तो पंख आ गई मैनाक को। सोने का पहाड़ है तो अहंकार भी आ गया। हरेक पक्षी को पैर दिये गए, पंख होते हुए! ये बहुत बड़ा आध्यात्मिक संकेत है मेरी व्यासपीठ की दृष्टि से कि परमात्मा शायद ये कहना चाहते हैं कि तुम्हें उड़ान मिल जाय, तुम्हें उंची से उंची पदवी मिल जाय तो भी पैर रखना ताकि तू जमीन पर पैर रख सके। वास्तविक भूमि को तू भूले ना। इसीलिए पैर दिये हैं। मैनाक को गर्व हो गया। सोने का पहाड़। सोने से कौन नहीं दबता? फ़िर इन्द्र से बिनती की गई कि ये मैनाक हैरान कर रहा है, छोटी-बड़ी बस्ती को परेशान कर रहा है। तो इन्द्र ने वज्र प्रहार किया और उनकी दोनों पंख काट दी। तो समंदर के अंदर उसको आश्रय मिला। ये बच गया। और हनुमानजी जब निकले सीता की शोध के लिए तो समंदर को लगा कि मेरे उपर भगवद्भक्त निकला है तो मेरा कर्तव्य है, मैं उसको थोड़ा विश्राम दूं। तो मैनाक को कहा, तू थोड़ा उपर आ और रामभक्त को थोड़ा विश्राम दे। और वो मैनाक बाहर आता है। श्री हनुमानजी महाराज को बिनती करता है कि आप थोड़ा विश्राम करो। मुझे कहना है विश्राम करने से संत की प्राप्ति हुई मैनाक को।

तीसरा पुन्य है स्वभाव; सहजता। युवान भाई-बहनों, अपने स्वभाव में रहना। लाओत्सू ने कहा है, तेरा स्वभाव ही धर्म है। माता-पिताओं को चाहिए कि अपने बच्चों को अपने स्वभाव में डेवलप होने दे। उसकी रुचि के अनुसार उनको होने दो। हम अपनी ईच्छाएं लादते हैं। मेरा स्पष्ट मानना है, अपने स्वभाव में जीना संत प्राप्ति का पुन्य है। यदि आप का स्वभाव उग्र है मानो, तो भी स्वभाव में रहना। संत मिलेगा। अंगुलिमाल को मिला था बुद्ध। उग्र से उग्र स्वभाववाला था अंगुलिमाल! उसको बुद्ध मिले थे। इतना बड़ा लूटेरा था वाल्मीकि, उसको नारद मिले थे। संत और भगवंत दोनों मिल गये शबरी को केवल स्वभाव के कारण। शबरी ने अपने स्वभाव से परमात्मा को पाया। न कोई साधना की, न करी गई कुछ। हां, श्रम किया। आश्रम को साफ़ किया। वृक्षों का पालन किया और फ़िर विश्राम करे। फ़िर स्वभाव में स्थित। भगवान भी मिले और संत लक्ष्मण भी मिले।

चौथा पुन्य है, हम सच्चे हो, प्रामाणिक हो फ़िर भी कभी कुछ सहन करना पड़े तो उसी समय सहन करना ये चौथा पुन्य है। एक माँ होती है न घर में साहब! उनको माला जपने की जरूरत नहीं। पूरे परिवार को सहन करती है ये उनका पुन्य है। एक माँ वीरबाईमाँ सहन करती है, जलारामबापा सहन करता है और इस सहनशीलतारूपी पुन्य के कारण कभी न कभी भगवान स्वयं संत बनकर उनके घर आ जाते हैं। और फ़िर कोई भ्रांति बची नहीं। सहनशीलता ये मेरी दृष्टि में पुन्य है। और बाप, कोई कैसा भी हो, क्या वर्ण है? क्या वर्ग है? क्या देश है? क्या जाति है? इस प्रपंच में बिलकुल पड़े बिना तुम्हारे पास कोई आया है उसका स्वीकार करो ये पांचवां पुन्य है। उसको संत मिल जाता है। दशानन के निर्णय का स्वीकार विभीषण ने किया। दशानन के अपमान का स्वीकार विभीषण ने किया। रावण के पादप्रहार का स्वीकार विभीषण ने किया तो ये विभीषण का स्वीकार राम-लक्ष्मण और हनुमान तीनों ने कर लिया। अब मैं आप से पूछता हूं कि इससे सरल पुन्य कोई हो सकता है? श्रम करो, विश्राम करो, स्वभाव में जीओ, सही है तो भी सहन करो और स्वीकार करो। और मैं यह अपने जीवन को आप के सामने रखूं तो मैंने श्रम किया है। यस, मैंने बहुत श्रम किया है। अभी भी श्रम कर रहा हूं। और श्रम के कारण मुझे संत मिला।

सद्गुरु ग्यान बिराग जोग के।

'रामायण' संत है। ये ('रामायण') संत है, ये सद्गुरु है, ये बुद्धपुरुष है। मैं उत्पात में नहीं रहता, विश्राम में रहता हूं। आदमी उत्पाती बहुत हो गया है! विश्राम करो। 'विश्राम' एक बड़ा प्यारा शब्द है। और तीसरा अपने स्वभाव में जीओ। मेरे पास कितने सुझाव आते होंगे? 'बापू, ऐसा करो, ऐसा करो!' मैं अपने स्वभाव में चलता हूं। अब अपनी बातें करना बहुत ठीक नहीं! सहन भी बहुत करता हूं। खुशी से सहन करे। दुनिया में ज्यादा प्रतिष्ठा मिलने लगे तो टेक्स भी चुकाना पड़ता है! तो आलोचना हो, निंदा हो, सहन करना पड़ता है। और स्वीकार करो। मेरी रामकथा बिनसांप्रदायिक कथा है। यहां कोई किसीको मना नहीं। सभी धर्म व्यासपीठ में समाहित होते हैं साहब! यद्यपि सनातन धर्म, वैदिक परंपरा का पूरा-पूरा गौरव और हिंदु होने का इतना ही आनंद क्यों न हो? मैं किसीको सुधारने के लिए निकला ही नहीं हूं, स्वीकार करने के लिए निकला हूं। स्वीकार करो साहब! तो बाप, इन पांच पुन्य से कोई संतवृत्ति व्यक्ति मिल जायेगी जो विशेषण मुक्त हो और वो हमें संसार केवल दुःखमय है ऐसा नहीं, संसार में सुख भी है। आप संसार को एन्जोय भी कर सकते हो।

कल की कथा के समापन के समय कुछ रामनाम की, प्रभु के नाम की महिमा की चर्चा हुई। उसके बाद गोस्वामीजी रामकथा का एक ऐतिहासिक रूप प्रस्तुत करते हैं कि सब से पहले 'रामचरित मानस' की रचना भगवान शिव ने की। यही रामकथा क्रम में

मेरे बारे में भी कई लोग कहते हैं कि बापू का पैर मत छूना, वर्ना बापू को उपवास पड़े! मैं उपवास करता नहीं हूं! लेकिन मुझे कोई पैर छूए ये मेरे स्वभाव में मुझे ठीक नहीं लग रहा है। मेरे पैर छूने से क्या है? शिस्त से आदर से आप खड़े रहो तो मैं आप को देखूं, आप मुझे देखो। कोई पैर छूए तो उपवास हो ऐसा कोई मेरा व्रत नहीं है। ये दुनिया बहुत अफवा फैला-फैलाकर ऐसा कर देती है! धर्म के नाम पर बहुत चला है! 'धर्म स्वच्छता अभियान' चलना चाहिए। ये बहुत आवश्यक है। 'भारत स्वच्छता अभियान' तो अपने देश की वर्तमान सरकार ने अच्छा आयोजन किया है। लेकिन आज एक 'धर्म स्वच्छता अभियान' भी होना चाहिए।

कागभुशुंडिजी को मिली। आप ने गरुड के सामने ये कथा खोली। वही कथा तीरथराज प्रयाग में भरद्वाज ऋषि के आश्रम में याज्ञवल्क्य महाराज को प्राप्त हुई और उसने भरद्वाजजी के सामने ये कथा का गायन किया। और इस प्रवाही गंगा परंपरा में तुलसी कहते हैं, मेरे गुरु के पास बैठकर मैंने ये कथा का श्रवण किया। मेरे गुरु ने मुझे बार-बार ये कथा सुनाई तब जाके कुछ समझ में आई। और जब समझ में आई तो भाषाबद्ध की।

कथा के चार घाट है। शिव की कथा ज्ञानप्रधान है। भुशुंडि की कथा ये उपासना, अनुष्ठानप्रधान कथा है। याज्ञवल्क्य की कथा ये कर्मप्रधान कथा है। और तुलसी की केवल शरणागति के घाट पर चलती कथा है। तुलसी ने शरणागति के घाट से कथा का आरंभ किया और हमें लिये चलते है कर्म के घाट पर प्रयाग में जहां याज्ञवल्क्य कथा गायेंगे। एक बार कुंभ में कुंभ का कल्पवास पूरा हुआ। सभी महात्मा लोग बिदा लेने गये। लेकिन याज्ञवल्क्य नामक महात्मा के चरणों को पकड़कर भरद्वाजजी कहते हैं, मेरे मन में एक द्विधा है कि रामतत्त्व क्या है? प्रभु, आप मेरी जिज्ञासा शांत करो। भरद्वाज की जिज्ञासा पर रामकथा का आरंभ कर्म के घाट पर याज्ञवल्क्य शुरू करते हैं। पूछी है रामकथा लेकिन आरंभ किया शिवकथा से। एक प्रकार का ये सेतुबंध था। तुलसी की जो एक मानसिकता है कि शैव और वैश्नवों का भेद मिट जाय। रामपंथी या शिवपंथी एक हो जाय। इसीलिए पूछी गई रामकथा और आरंभ कर दिया शिवकथा के द्वारा। और शिव द्वार है रामकथा का।

एक बार त्रेतायुग में भगवान शिव अपनी धर्मपत्नी सती जो दक्ष की कन्या है उसको लेकर कथा सुनने के लिए कुंभज ऋषि के आश्रम में गये। सती गलत अर्थ करती जा रही है और कथा चुक जाती है! भगवान शिव ने सुख मानकर कुंभज से रामकथा का श्रवण किया। वर्तमान त्रेतायुग की रामलीला चालु थी। भगवान ललित नरलीला कर रहे थे। राम-लक्ष्मण जानकी को रोते-रोते खोज रहे थे उसी समय शिव और सती दंडकवन से निकले कैलास जाने के लिए। दूर से 'सच्चिदानंद' कहकर शिवजी ने प्रणाम किया। शिव को प्रणाम करते देख सती को संदेह हुआ कि ये कौन है? शिवजी ने कहा देवी, आप का स्त्री स्वभाव है। किसी न किसी बात पर बार-बार अकारण संदेह करना आप की प्रकृति है लेकिन ये ब्रह्म है, परमात्मा है। लेकिन सती को उपदेश नहीं लगा। सती से कहते हैं, मेरे कहने पर आप का संदेह न गया तो आप खुद जाकर परीक्षा करे कि ये ब्रह्म है कि जीव है? सती अकेली जाती है। बौद्धिक अहंकार है। इसीलिए विश्वास का अनादर किया। और सती परीक्षा करने गई और शिव यहां बैठे-बैठे हमारे जैसे जीवों के लिए बहुत सुंदर सूत्रपात देते हैं-

होइहि सोइ जो राम रचि राखा ।
को करि तर्क बढ़ावै साखा ।।

मेरे भाई-बहन, कोई घटना में समझाने के पूरे प्रामाणिक प्रयास कर दिया जाय, फ़िर भी सामनेवाली व्यक्ति समझे नहीं तो परमात्मा पर छोड़ देना। प्रयत्न कर लेना, फ़िर भी सफलता न मिले तो हरि पर छोड़ देना। यहां सती जहां राम की लीला चल रही है वहां जाती है। सीता का रूप लेती है। भगवान राम पहचान लेते हैं। और सती समझ गई कि मुझे पहचान गये! भागती है! भगवान अपना ऐश्वर्य दिखाते हैं! आई शिव के पास। सती झूठ बोलती है। अंतर्यामी शिव ध्यान में सब जान लेते हैं। प्रेरणा हुई अंदर से और संकल्प लिया कि अब सती का शरीर जब तक रहेगा तब तक मेरा और सती का गृहस्थ जीवन यहां पूरा हो गया। विच्छेद हो गया। संदेह विघटन ही कर सकता है। 'भगवद्गीता' ने कह दिया, 'संशयात्मा विनश्यति।'

शिव और सती गृहस्थ है। लेकिन एक बौद्धिक है, एक विश्वासु है। ताल-मैल बैठा नहीं। परिणाम ये आया कि संबंध विच्छेद हो गया। कैलास पहुंचे हैं और शंकर भगवान अपनी प्रतिज्ञा का स्मरण करके कैलास के भवन में जाने के बजाय बाहर आसन लगाकर समाधि में बैठ जाते हैं। शिवजी को अखंड समाधि लग गई। सतासी हजार साल तक सती दुःखी रहती है। सती उपाधि में और शिव समाधि में है।

शास्त्र फल नहीं देता, शास्त्र रस देता है

आज बहुत से प्रश्न भी है। कुछ कथा के अनुसंधान में है, कुछ ऐसे भी है। श्री हनुमानजी पुन्यपुंज है और कल की कथा में हमने चर्चा की कि बिना पुन्यपुंज संत नहीं मिलता। आरपार शुद्ध व्यक्ति नहीं मिलता। और ये पांच पुन्य की चर्चा मेरी व्यासपीठ ने आप के सामने रखी। एक तो श्रम; दूसरा, विश्राम; तीसरा अपना स्वभाव; चौथा सहनशीलता और पांचवां स्वीकार। ये भी पुन्य है। 'पुन्य' शब्द के बहुत से अर्थ है। लेकिन पुन्य का एक अर्थ है पवित्र भी। जैसे हम कहे कि ये पुण्यकर्म करता है। पुन्य का एक अर्थ है परम। 'परम' बहुत उंचा शब्द है। शायद इससे उंचा शब्द खोजना मुश्किल है। परम प्रेम, परम प्रीति, परम रम्य आदि 'मानस' में भी आप को बहुत शब्द मिलेंगे। कहीं-कहीं पुन्य का अर्थ है, परम श्रेष्ठ। बिध-बिध अर्थों में पुन्य को देखना चाहिए।

प्रश्न है, 'बापू, हुं अमारे घरे हंमेशा किडियारुं पूरुं छुं, चकलाने हंमेशा चण आपुं छुं, अनाथ कूतराना सेंटरमां गुरुवारे खावानुं आपवा जाउं छुं, ए पुन्य कहेवाय?' हा, ए पुन्य छे। सारी वस्तु छे। लेकिन इस कथा में 'पुन्य' शब्द का कुछ गहराईपूर्वक दर्शन हो रहा है, कुछ विशेष चर्चा हो रही है। लेकिन आप जो करे ये अच्छी बात है। दूसरा प्रश्न है, 'फरगिवनेस पुन्य है?' ये कहना चाहते हैं कि 'भूल जाना ये पुन्य है? क्षमा करना ये पुन्य है?' ए तो बहु मोटुं पुन्य के'वाय यार! एक श्रोता ने पूछा है कि 'बापू, रामकथा में बहुत प्रलोभन बताये हैं, उसकी फलश्रुति बताई है और हमने ये फलश्रुति सुन-सुन कर 'रामायण' का पाठ किया लेकिन कुछ फल मिला नहीं तो बहुत गेरसमझ होती है।'

साहब, कोई भी शास्त्र थोड़ा फल दिखायेगा कि ये करो, ये करो, ये करो ताकि हम आगे जाय। बाकी जिस तरह से मैं 'मानस' पढ़ता हूं और जिस तरह से मैं आप से कहना चाहता हूं उसमें प्लीज़, कोई भी आकांक्षा रखे बिना काम करो। ये बताया, जैसे बच्चे को स्कूल में भेजने के लिए हम कुछ न कुछ देते हैं कि ये चोकलेट ले, फल्लां ले, फल्लां ले! मैंने तो 'हनुमानचालीसा' की कथा इतनी बार कही वहां भी अष्टसिद्धि, नवनिधि आदि के अर्थ बदले हैं और आप ने भी पूछा है कि 'फ़िर बात को तात्त्विक रूप में ले जानी पड़ती है और हम कन्फ्यूझ होते हैं तो हम क्या करें?' मेरे

भाई-बहन, पहले कभी तो थोड़ा प्रयोग करो कि कोई भी अपेक्षा के बिना 'मानस' का पाठ करो। 'भगवद्गीता' ने हम को समझाया है, 'मा फलेषु कदाचन्।' सब से अधिक फल तो यही है 'मानस' पढ़ते-पढ़ते यदि आप को रस मिला तो ये फल के उपर की बात आप को मिल गई। फल तो अभी पका न पका, सीधा रस मिल गया! फल में तो देर लगेगी यार!

मैं ये पाश्चात्य विद्वानों के बारे में ज्यादा जानता नहीं हूं लेकिन थोड़ा-थोड़ा कभी पढ़ लेता हूं तो मैं उस पर सोचता हूं जब समय मिले। ये फ्रोइड़ जो हुआ उसने वासना के सिवा कुछ नहीं है, ऐसा एक सिद्धांत प्रतिपादित कर दिया बस, ये जगत वासनामय है! और दूसरा हुआ मार्कस उसने कहा कि बस यहां धनसंग्रह! वहां वासना संग्रह, यहां धन संग्रह। लेकिन इन महानुभावों से मैं कहना चाहता हूं कि ये काम और अर्थ, इनको तो हमनें भी कुबूल किया है। लेकिन हमनें उनको बीच में रखा। आगे 'धर्म' रखा, पीछे 'मोक्ष' रखा। बाकी अर्थ का अनादर किसने किया? आप रामकथा करवाते हो तो पैसे नहीं चाहिए? अर्थ तो चाहिए। और बिना वासना जगत ठप्प हो जायेगा! मेरे देश के मनीषिओं ने ये दोनों को पुरुषार्थ के रूप में स्वीकार किया। इतना ही नहीं, फल के रूप में भी स्वीकार किया। इसको पुरुषार्थ भी कहा, उसको 'जो दायक फल चारि' कहा। लेकिन दो बस्तु जो जोड़ी भारतीय ऋषिओं ने; एक तो धर्म। तू संसार भोग लेकिन धर्म का ख्याल कर। धर्म मानी सत्य, प्रेम, करुणा मेरी दृष्टि में। तू पैसा कमा लेकिन धर्म का ख्याल कर। और भारतीय मनीषिओं ने तो वहां तक कह दिया, एक स्थिति तेरी ऐसी आये कि तू अर्थ तो छोड़, तू कामना तो छोड़, तू धर्म भी छोड़! उसीको कहते हैं मोक्ष।

सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणंव्रज।

ये केवल भारत कह सकता है। अर्थ तो छोड़, धर्म भी छोड़! अर्थ तो छोड़ ही छोड़। काम तो छोड़ ही छोड़। और मोक्ष क्या है, मुझे ख़बर नहीं लेकिन एक अवस्था आने पर धर्म छूट जाय, अर्थ छूट जाय, काम छूट जाय, फ़िर जो बचता है उसका नाम मोक्ष है। जो शेष रह जाय वो मुक्ति है।

मेरे भाई-बहन, मेरे कहने का मतलब कि इसी 'रामचरित मानस' ने निष्कामता पर कितना बल दिया है उसको तो खोजो! एक शोपिंग मोल में सब कुछ मिलता है लेकिन सब हमें लेना नहीं है। एक बार तो बिना कामना 'मानस' पढ़ो कि मुझे मोक्ष भी नहीं चाहिए 'रामायण' पढ़ने के बाद। मुझे अर्थ भी नहीं चाहिए। 'रामायण' पढ़ते-पढ़ते मैंने कभी अर्थ कामना नहीं की। आप तो मेरे हैं, मैं आप का हूं इसीलिए कहूं, अर्थ हमारे पीछे-पीछे जूतियों की तरह घूमता है! सायकल थी तो पंप नहीं था, ऐसी हालत थी! आज लोग हमें चार्टर्ड में ले जाते हैं! कभी बिना लालच काम करो। रस लो। तुलसी कहते हैं कि मुझे 'रामायण' कहना है ये मेरा स्वान्तः सुख है। मोरारिबापू कहता है, ये मेरा कोई दायित्व नहीं है, ये मेरा आनंद है, मेरी मस्ती है। और चलो, हम तो आये, आप क्यों आये हैं? कुछ होंगे जिसकी कुछ कामना होगी कि कथा सुने तो पुन्य मिल जाय, स्वर्ग मिल जाय; हो सकता है। मैं अनादर नहीं कर सकता। प्लीज़, ठीक से मेरी बातों को आप समझे। मैं तो कहूं कि प्राप्ति के लिए भी पुकारना मत। पुकार के लिए पुकारो।

जैसे जीव तीन प्रकार के हैं वैसे श्रोता भी तीन प्रकार के हैं। विषयी, साधक और सिद्ध। विषयी स्वभाव के जितने श्रोता होंगे उनको शास्त्रकार कहेंगे कि ये करोगे तो ये होगा, ये होगा। और संसार में विषयीओं की संख्या ज्यादा है। हम और आप सब विषयी है। अब साधक की बात आयेगी तो उनको कामवृत्ति के लिए और बातें बताई जायेगी। और सिद्धों के लिए जब कथा कही जायेगी तो कुछ ओर बात होगी। प्लीज़, हो सके तो शास्त्रश्रवण, शास्त्रदर्शन, शास्त्रपठन हेतु से मत करो, हेत से करो। शास्त्र फल नहीं देता, शास्त्र रस देता है। सीधी छलांग है। काम बीच में रह जाता है। रस प्राप्ति हो जाती है। मैं कथा गाता हूं, सही में ओलरेडी रस मिलता है। आप सुनते हो तो आप को रस मिलता होगा वर्ना बार-बार क्यों मुझे सुनते हो? मेरे भाई-बहन, कुछ काम तो ऐसे करे कि जहां कुछ हेतु न हो।

तो पुन्य की विशेष रूप में चर्चा हो रही है। पुन्य मानी पवित्र। पुन्य कर्म, पवित्र कर्म। कोई भी हो। जैसे चकली को आप चण दो ये भी पुन्य है। लेकिन इस कथा में जो पुन्य की बातें है आप समझ सकेंगे। और मैं कोई भ्रांति में हूं तो अल्लाह मुझे भ्रांतिमुक्त करे, लेकिन शायद आप के सुनने और आप के समझने का स्तर मेरी व्यासपीठ ने जरूर ऊंचा किया है। ये बच्चें क्यों सुनते हैं चुपचाप? उसको कोई फल नहीं मिल रहा है। शायद उसको कहीं न कहीं रस मिलता होगा। मैं तो बार-बार खुला कहता हूं कि जिसको स्वर्ग चाहिए, मेरी कथा में न आये! मैं तुम्हारी बीमारी ठीक नहीं कर पाता, तुम्हें बीमार कर सकता हूं कृष्ण-प्रेम में कि जो दर्द हजारो स्वास्थ्य से बढ़कर है। और एक बार इस दृष्टि से कथा सुन लोगे तो हर मोड़ पर परमात्मा खड़ा है यदि आंख खुल जाय! कोई टर्न ऐसा नहीं जहां ईश्वर खड़ा न हो। ईश्वर राम की कथा में भी हो और घर में काम करनेवाला कोई रामा हो उनकी व्यथा में भी राम हो सकता है। हर मोड़ पर हरि खड़ा है। लाठी के राजवंशी शायर कवि कलापी ने गाया है-

ज्यां ज्यां नजर मारी ठरे यादी भरी त्यां आपनी।
ज्यां ज्यां चमन ज्यां ज्यां गुलो त्यां त्यां निशानी आपनी।

ईश्वर हस्ताक्षर करता है तो अक्षरों में नहीं लिखता कि रामचंद्र, कृष्ण, महादेव, ऐसा हस्ताक्षर नहीं करता। सुबह में फूल खिला देता है वो उनके हस्ताक्षर है। उम्मर खय्याम ने अपनी रुबाईयां भले शराब को केन्द्र में रखकर लिखी हो। जरा आक्रमक न लगूं तो सोचिए जरूर, परमात्मा के जैसी दुनिया में कोई शराब नहीं है। आख़िरी शराब कोई है तो परमेश्वर है! जिसने एक घूंट पी, जनम-जनम ऊतरी नहीं। जिसको हरिरस कहते हैं। जिसको रामरस कहते हैं। जिसको 'रसो वै सः' कहते हैं। रस के लिए सुनो, छोड़ो प्रलोभन को। यद्यपि कथा पवित्र है इसीलिए पुन्य है। पुन्य का एक अर्थ मंगल भी होता है। मैं कितने-कितने अर्थ निकालूं? कथा मंगल है तो ये पुन्य है।

तो पुन्य की बहुत परिभाषाएं है। पुन्य का बड़ा विस्तार है। 'मानस' में सात प्रश्नों में पुन्य की बात आई। सब से बड़ा पुन्य कौन? तो कागभुशुंडिजी जवाब देते हैं-

परम धर्म श्रुति बिदित अहिंसा।

और सब से बड़ा पाप कौन? तो-

पर निंदा सम अघ न गरीसा ।।

ये पुन्यवाला प्रश्न तुलसी ने स्वयं ने उठाया है कि सब से बड़ा पुन्य कौन? तो अहिंसा। हमारी मानसिकता के कारण किसीको ठेस न पहुंचे, हमारे वचन से किसीका दिल न दूभ जाय और हमारे कर्म से हम किसीको धक्का न दे ये पुन्य है। रुपया देना ही पुन्य नहीं है। जिसके पास है वो दे लेकिन पुन्य रुपयों में नहीं आता। तो पुन्य की बड़ी विशाल व्याख्या 'रामचरित मानस' के संदर्भ में मुझे दिखती है सो आप से कहता हूं। कुल मिलाकर सात बार 'पुन्यपुंज' शब्द 'मानस' में है।

'बापू, सहनशक्तिनी वात करीए तो 'रामचरित मानस' मां कोणे बहु सहन कर्युं?' सब से पहले बहुत ज्यादा सहन किया अहल्या ने। और परायों से नहीं, अपनों ने बहुत उसको कष्ट दिया है! बहुत सहन किया है। 'मानस' के आधार पर कहूं, ज्यादा सहन करने का करीब-करीब मातृशरीर में ही आता है। अत्यारे थोडुंक ऊंधुं छे! बाकी मातृशरीर को जितना सहन करना होता है, तुलना में पुरुष को इतना सहन करना नहीं होता। दूसरा सहन किया शबरी ने। तीसरा हद से ज्यादा सहन किया केवट ने। अछूत! तिरस्कृत! उपेक्षित! जिसकी छांया में पैर पड़ जाय तो लोग उसी समय न्हा लेते थे! और राजपरिवार में जाऊं तो सब से ज्यादा सहन किया है भगवती ऊर्मिला ने। अद्भुत सहन किया है लक्ष्मण धर्मपत्नी ने! और ऊर्मिला का तो जिक्र होता भी है। एक महाकाव्य लिख दिया 'साकेत' बीसवीं सदी के कवि मैथिलीशरण ने। लेकिन मांडवी? और 'मानस' में जिन-जिनने सहन किया है इन सब को संत नहीं, भगवंत मिला है। किसी न किसी रूप में परमात्मा उसको प्राप्त हुआ है।

यद्यपि केवट आप को हंसता दिखाई देगा। लेकिन ये पूरी जाति ने सहन बहुत किया है। रामजी जब गंगा के तट पर गये तो गंगाजी को देखते ही रथ से उतर गये। लेकिन भरतजी जब जा रहे हैं राम को मिलने के लिए तब गंगा को देखकर भरतजी रथ से नहीं उतरे हैं।

लेकिन भरत ने गुहराज को, एक दलित को, एक वंचित को, जिसकी कोई गिनती नहीं इस आदमी को आदर्श बनाया। भरत ने गंगा को आदर्श नहीं बनाया, एक अछूत को एक वंचित को अपना आदर्श बनाया। मुझे लगता है कि संत जितना जानता है कि कौन कितना सहन करता है, इतना इस दुनिया में माई का लाल कोई नहीं जानता। एक साधु की आंख सहनशीलता का मीटर है, उसको नांपती है। एक आदमी मुस्कुराता होगा तो भी समझ लेगी साधु की आंख कि अंदर से बहुत रोया है आदमी!

जो बांटता फिरता था जमाने को उज़ाला,
उस शख्स के दामन में अंधेरा भी बहुत है।
ये सच है कि तूने मुझे चाहा बहुत है,
लेकिन मेरी आंखों को रुलाया भी बहुत है।

- 'शाद' मुरादाबादी

लोग मुझे पूछते हैं कि सहन करे तो कितना करे? सहन करना स्वभाव बना लो! जैसे किसीका मुस्कुराना स्वभाव है। वैसे सहन करना स्वभाव हो जाय। बहुत-सी आपत्ति से हम बच जाते हैं। तो 'मानस' में ऐसे कई पात्र है। केवट को तुलसी ने पुन्यपुंज कहा है।

बरसि सुमन सुर सकल सिहाहीं ।
एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं ।।

तो केवट पुन्यपुंज है। उसके लिए देवताओं का प्रमाणपत्र नहीं, प्रेमपत्र है। जब केवट आनंद में उभर कर अत्यंत अनुराग से भगवान के चरणकमल को पखारने लगा। उस दृश्य को देखकर तमाम देवगण आकाश में आ गये थे और केवट पर पुष्प की वृष्टि करने लगे हैं। ऐसा ये आदमी पुन्यपुंज है। केवट को तुलसी ने पुन्यपुंज क्यों कहा? उसने कौन से पुन्य किये? आईए उसकी चर्चा करें। केवट ने 'भगवद्गीता' में जो लिखा है वो सब पुन्य किये हैं। 'भगवद्गीता' का एक श्लोक है। पूरी 'भगवद्गीता' अद्भुत है! लेकिन मेरे कुछ अत्यंत प्रिय श्लोक है, इनमें से ये श्लोक एक है-

ब्रह्मभूत: प्रसन्नात्मा न शोचति न काङ्क्षति ।
सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम् ।।

ये श्लोक के जितने लक्षण है वो केवट के पुन्य है। उसने बहुत सहन किया, इसीलिए भरत का आदर्श बन गया। गंगा ने दुनिया को पवित्र की लेकिन इन लोगों को तो पतित रखा, जो उनके किनारे रहते थे! भरत का आदर्श है आख़िरी आदमी! मैं मेरी जिम्मेवारी से कहूं, भरत का यदि कोई आदर्श है तो गंगा नहीं, गंगा में नौका चलानेवाला केवट उनका आदर्श है। यद्यपि वशिष्ठजी थोड़े दूर रहे। संस्कार अच्छी बस्तु है, लेकिन अति संस्कार ठीक नहीं है। वशिष्ठ में अति संस्कार है। इसीलिए वो सोचते हैं, उसको कैसे छूउं? मैं उंचे घराने का पुरोहित हूं। अति संस्कार आदमी को समाज से बिलग कर देता है। सम्यक् संस्कार होना चाहिए आदमी का। वशिष्ठजी तो बड़े ब्राह्मण देवता है, धर्मगुरु है साहब! बाद में तो उसकी भ्रांतियां भी टूट गई। और बरबस भेटतें हैं गुह को। छोड़ ये संस्कार ये सब! गले लगा लेते हैं वशिष्ठजी। 'रामचरित मानस' को इस दृष्टि से देखो। उसने दिया क्या वो मत सोचो! उसने भ्रांतियां कितनी तोड़ी वो देखो!

'ब्रह्मभूत:' एक पुन्य है ये। ब्रह्मभूत का एक अर्थ होता है ब्रह्मभाव में स्थित रहना। हम नहीं रह पाते यार! अब आप कहेंगे, केवट ब्रह्मभाव में स्थित? पहले तो देवताओं ने उसको प्रेमपत्र दिया, पुष्प की वृष्टि हो रही है। आंबेडकरदादा ने बहुत काम किया। जितने-जितने महापुरुष हुए सब ने ये वर्गभेद, वर्णभेद तोड़ा। लेकिन थोड़ा पीछे तो जाओ, तुलसी ने कितना काम किया? उज्वल वर्ण के नागर गृहस्थ नरसिंह मेहता इतनी साल पहले एक दलित के घर जाकर भजन कर सकता है! ये क्रांति काठियावाड कर सकता है!

एवा रे अमे एवा रे, तमे कहो छो वळी तेवा रे,
भक्ति करता ये भ्रष्ट थईशुं तो करीशुं दामोदरनी सेवा रे...

तो, ब्रह्मभाव में स्थित रहना मेरी दृष्टि में एक पुन्य है जो पुन्य केवट ने कमाया था। अब कैसे? ये निरंतर 'अहं ब्रह्माऽस्मि', 'अहं ब्रह्माऽस्मि' बोलता था? ये ध्यान करता था? ये योग का आसन करता था?

ये यज्ञ करता था? नित्य अभिषेक करता था? उसके पास माला थी? नहीं। फ़िर भी मेरी व्यासपीठ ब्रह्मभूत उसको कहेगी, अवश्य। मेरे 'रामचरित मानस' में लिखा है, गंगा का प्रवाह ये ब्रह्ममय वारि है। गंगा में ब्रह्म बहता है और ये आदमी चौबीस घंटों गंगा में रहता है इसीलिए ब्रह्मभूत:। और केवट के समान ब्रह्मभाव में स्थित और कौन? 'ब्रह्मभूत प्रसन्नात्मा' ये आदमी अभाव में प्रसन्न है। प्रसन्न नहीं होता तो विनोद नहीं कर सकता। प्रसन्न नहीं होता तो व्यंग नहीं कर सकता। प्रसन्न नहीं होता तो ये आदमी राम के सामने अभय होकर दलीलबाज़ी नहीं कर सकता। ये प्रसन्न आत्मा है। 'न शोचति न काङ्क्षति।' उसको कोई चिंता नहीं है। कहता है, तुम्हारे भाई लक्ष्मण धनुष पर तीर चढ़ाकर यदि मुझे मार दे तो मौत की भी मुझे चिंता नहीं है! मर जाउंगा! मैं पैर धोये बिना आप को जाने नहीं दूंगा। ये जीद करके बैठा है। मुश्किल है लेकिन हम भी जितना समय ब्रह्मभाव में रह सके, पुन्य कर रहे हैं। गुह को कोई इच्छा नहीं है। उतराई का एक पैसा नहीं लेना है। कोई अपेक्षा नहीं है। भगवान मणिमुद्रिका देने लगे तो भी कहे, मुझे कुछ नहीं चाहिए। एक भी अपेक्षा इस आदमी की नहीं है। किसी से किसी भी प्रकार की अपेक्षा न रखना पुन्य है।

सम: सर्वेषु भूतेषु मद्भक्तिं लभते पराम्।

प्राणीमात्र में जो समान दृष्टि रखता है वो पुन्य कर रहा है। केवट में ये पुन्य भी है। उसके तट पर जो पहला आता है उसको पहले पार करता है। बाद में आता है उसको बाद में पार करता है। भगवान राम ने पैर धुलवा दिये और प्रभु ने कहा कि बस, अब तो चढ़ा दे। बोला, नहीं महाराज, हम पंक्तिभेद नहीं करते हैं। लाईन में जो पहले खड़े हैं उसको उतारुं, आप का नंबर जब लगेगा तब मैं ले चलूंगा। मेरे ऐसे बहुत अनुभव होते हैं देश में और एयरपोर्ट में कहीं जाते हैं तो कोई न कोई साथ में तो होता है मदद करनेवाला। तो उनकी पहचान होती है तो लाईन बड़ी होती है तो हम को आगे कर देते हैं! मुझे जरा भी अच्छा नहीं लगता! मेरे स्वभाव के अनुकूल नहीं है। पहचानते हो वो तो मानेंगे कि नहीं, ये बापू है, जाने दो; लेकिन जो नहीं पहचानते हैं वो ऐसे देखते हैं कि ये कौन आया? समाज में प्रभुकृपा से जिसको प्रतिष्ठा मिल गई हो ऐसे प्रतिष्ठित को भी सहज जीने दो। आप को पता है? आप की जिस पर श्रद्धा होती है उसको बदनाम करने का काम भी आप ही थोड़ा बहुत किया करते हैं! सामान्य रहने दो न यार! केवट समदर्शी है।

भक्ति दो प्रकार की है। एक पराभक्ति, एक अपराभक्ति। पराभक्ति मिलती है केवल केवल केवल कृपा से। और अपराभक्ति में साधन करना पड़ता है। केवट अपराभक्ति का भक्त नहीं है, पराभक्ति का आदमी है। 'मानस' में अपराभक्ति की चर्चा जो है इनमें से एक भी केवट ने की है? न को!

प्रथम भगति संतन्ह कर संगा ।
दूसरि रति मम कथा प्रसंगा ।।

अपराभक्ति का पहला लक्षण है सत्संग। केवट ने कहां सत्संग किया? किस संत के पास वो बैठता था? भगवान की कथा में प्रीत रखना, भगवान की कथा सुनना, ये भी केवट में नहीं दिखता है! ये कहां कथा सुनने गया? और ये आदमी को मज़दूरी करना है, कहां कथा का समय उसके पास कि कथा सुने? अभिमान छोड़कर अपने गुरु के चरणकमल की सेवा ये तीसरी भक्ति है। केवट का गुरु कौन? दिखता नहीं है। चौथी भगति भगवान का गुणगान गाना, भगवान की कथा कहना। कहां पखवाज लेकर इस केवट ने कीर्तन किया? भगवान कहते हैं शबरी से कि मेरे मंत्र का दृढ़ विश्वास से जप करना ये पांचवीं भक्ति है। ये केवट कौन मंत्र का जप करता था? मंत्र मुद्रि राम देते थे तो भी लिया नहीं! तो पांचवीं भगति भी नहीं दिखती है। सम-दम का धारण करना, वैराग लेना, बहुत कार्यों से निवृत्ति लेना, सज्जन के धर्म का अनुसरण करना ये भी तो दिखता नहीं है! तथाकथित धर्म नहीं दिखता इसमें। सातवीं अपराभक्ति जो है, परमात्मामय जगत को देखना। ये आदमी परमात्मामय जगत को देखता हो ये थोड़ा कुबूल करना पड़ता है। आठवीं भक्ति है अपने

पुरुषार्थ के कारण जो लाभ मिले उसमें संतुष्ट हो जाना। यद्यपि ये संतुष्ट नहीं है। उसको पैर धोना है, पितृओं का उद्धार करना है, पूरे परिवार को तारना है और संतुष्ट हो गया होता तो ये नहीं कहता कि लौटो तब देते जाना। किसीका दोष देखना, न देखना ऐसा कोई प्रसंग ही यहां नहीं उठता है। इसीलिए ये बात भी लागू नहीं होती है।

अपराभक्ति का नववां लक्षण है सरलता। केवट में सरलता नहीं दिखती है, सहजता दिखती है। कड़क भाषा बोलता है, सरल नहीं दिखता यहां। सहज जरूर है, जो उनका स्वाभाविक है जीवन। और नववीं भक्ति किसीको छल नहीं, कपट नहीं, खेल नहीं। थोड़ा खेल तो किया उसने! होशियारी थोड़ी की। अहल्यावाली बात करके पैर धोने के लिए थोड़ी चतुराई तो जरूर की है। लेकिन अपराभक्ति के लक्षण में जो आता है वो उनमें नहीं दिखता है। भरोसावाली बात छोड़ दीजिए लेकिन जिस तरह वो पेश आ रहा है उसमें हर्ष और दीनता से पार हो ऐसा भी कुछ दिखता नहीं है। हर्ष और दीनता दोनों उस पर लागू होती है। तो एक अर्थ में यदि अपराभक्ति के लक्षण देखे और फ़िर 'भागवतजी'में आप प्रह्लादवाली अपराभक्ति देखे तो वो भी यहां कुछ दिखती नहीं है।

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यं आत्मनिवेदनम् ।।

सुनना, श्रवण करना। केवट कहां कथा में जाता था? कहां कीर्तन करता था? स्मरण कहां करता था? पादसेवन का अवसर आया, पैर धोने का तब धो लिए। कहां अर्चन? कहां विधिविधान? वंदन तो करता ही नहीं है! वो तो भगवान जब ऊतराई देने लगे तब 'केवट चरन गहे अकुलाई।' बाकी पहले कहां वंदन किया? दास्यवाली भी बात नहीं। आमने-सामने दो-टूक बोलता है! न सख्यभाव है; सखा तो प्रभु ने उसको बना लिया है। और 'आत्मनिवेदनं' नहीं है। तो केवट पराभक्ति का आदमी है। तो केवट पुन्यपुंज है। ये सब आत्मीय पुन्यों की चर्चा है, ध्यान देना।

मेरे दादाजी, मेरे सद्गुरु भगवान जिन्होंने मुझे रामकथा दी कृपा से। उसने मुझे पांच बातें बताई थी। अब कितना हम आचरण कर सके ये तो मैं जानूं और दादा की चेतना जाने और तीसरा ये मेरे पीछे बैठा है (हनुमानजी) वो जाने। लेकिन पांच बातें कही थी। मैं भी आप से कहूं कि यदि प्रसन्न रहना है तो जितनी मात्रा में यदि ये पांच बातें हम कर सके तो प्रसन्न स्थितिवाला पुन्य हम कमा सकते हैं। पहला सूत्र था, बेटा, जहां तक संभव हो सत्य बोलना और वो भी प्रिय सत्य बोलना। यदि कर सको तो। दूसरी बात कही थी, किसीकी निंदा और किसीकी इर्ष्या नहीं करना। प्रसन्न रहना है तो ईर्ष्या और निंदा छूटे। ईर्ष्या जीव से होती है और निंदा जीभ से होती है। तीसरा सूत्र, अहंकार से सावधान रहना। शायद इस बुढ्ढी आंखों ने देखा होगा कि कभी ये कथा कहां से कहां उसको ले जायेगी और इनका अहंकार उसको न आ जाय इसीलिए कहा होगा कि अहंकार से सावधान रहना। एडवान्स में उसने एक ब्रेक लगा दी। हम जीव है, अहंकार आ जाता है। और चौथा, 'भगवद्गीता' और 'रामचरित मानस' का नित्य पाठ करना। और इतनी वास्तविक बातें कही कि सुबह में ही करना ऐसा नहीं, जब समय मिले कर लेना। बिलकुल फ्रिडम दी थी। पांचवां और अंतिम सूत्र था कि इष्टदेव के मंत्र का जप करना और जहां तक संभव हो मौन रहना। ज्यादा बोलना मत। मुझे तो बहुत वरदान-सा लगता है। जितना हो सके ब्रह्मभाव में रहना पुन्य है। प्रसन्न रहना पुन्य है।

भक्ति तीन प्रकार से प्राप्त होती है। एक तो ज्ञान से; एक भक्ति मिलती है कर्म से और तीसरी भक्ति मिलती है केवल विश्वास से। केवल भरोसो। गुरु देता है दूर का चश्मा। थोड़ा धैर्य रखने से पता लगता है कि जो हुआ, ठीक हुआ। लेकिन उसके लिए चाहिए भरोसो। और हमारी बुद्धि भरोसा होने नहीं देती! तर्क करती है, वादविवाद करती है! 'न शोचति न काङ्क्षति।' न मांगो तो बहुत मिलता है। अयाचक रहना बहुत कठिन है। और चारों ओर से प्रलोभन मुँह फाड़ खड़े हो उसी समय अयाचक रहना बहुत कठिन है। मेरी व्यासपीठ की दृष्टि में केवट पुन्यपुंज है। इनमें ये सब पुन्य व्यासपीठ को नजर आता है।

'बापू, तमे कीधुं के कंई मागवानुं नहीं। पण गुरुकृपा, गुरुसेवा, गुरुभक्ति ए जो मागवुं होय तो मागी शकाय?' हां, गुरुकृपा, गुरुसेवा जरूर मांग सकते हैं। 'मानस'में ये पक्ष है कि ये आप मांग सकते हैं। फ़िर भी यदि हमारी योग्यता सध जाती है तो, 'बिन मांगे मोती मिले।' मिल ही जाता है। यद्यपि मैं टोटली मांगने से विरुद्ध में हूं। मेरा व्यक्तिगत ये अभिप्राय हैं। बाकी भगवान शंकर भी रामकथा में मागते हैं। एक बार नहीं, बार-बार भगवान शंकर ने प्रभु श्रीरंग से मांगा और आप हर्षित होकर देना ऐसा कहा। लेकिन कृपा, अनुग्रह, आश्रय, पादुका, मंत्र, सत्संग आदि ऐसी बस्तु है कि हम जैसे जीव जरूर मांग सकते हैं।

तो बाप, आपने अच्छी बातें पूछी। भगवान शिव के कहने पर सती मानी नहीं। कैलास पर शिव समाधि में बैठे हैं। सतासी हजार साल तक सती उपाधि में है। शिव जागे। सती आकर प्रणाम करती है। उसी समय सती के पिता यज्ञ कर रहे हैं। सभी देवताओं को निमंत्रित किया। और बदला लेने के लिए शिव को निमंत्रित नहीं किया। मेरी व्यासपीठ ने कई बार कहा कि परमात्मा अवसर दे तो बदला मत लेना। हो सके तो बलिदान दे देना, कुरबान कर देना। शिवजी ने विवेक से सती को समझाया लेकिन सती मानी नहीं। सती जाती है। शिव का इतना बड़ा अपमान उसने देखा और क्रोध आ गया सती को। सती ने यज्ञकुंड में अपना देह जलाकर भस्म किया! हाहाकार हो गया! दक्ष की दुर्गति हो गई। सत्कर्म कितना ही बड़ा क्यों न हो, सत्कर्म का अहंकार सत्कार्य की फलश्रुति का बाधक है। दूसरे जनम में हिमालय के घर शैलजा के रूप में पर्वतराज के घर पार्वती के रूप में जगदंबा का प्रागट्य हुआ है। पार्वती जब से हिमालय के घर आई है, समृद्धि बहुत बढ़ी। बिन बुलाये योगी और बड़ी-बड़ी सिद्धिवाले महापुरुष हिमालय के घर मेहमान होने लगे। मेरी व्यासपीठ अक्सर कहती रही परिवार में कन्या का जनम हो तो समझना हमारे घर दुर्गा जनमी है। हमारे यहां बेटी जनमे तो सात प्रकार की समृद्धि तो आती ही है, जो 'भगवद्गीता' में लिखी गई है, 'कीर्तिः श्रीर्वाक्च नारीणां स्मृतिर्मेधा धृतिः क्षमा।' सात प्रकार की विभूति एक नारी के संग संग आती है। तो कन्या का जनम हो तो उत्सव मनाना चाहिए, ज्यादा प्रसन्नता होनी चाहिए।

मैं कहता रहता हूं, दक्ष की कन्या सती बुद्धि थी। बुद्धि जल गई। और पार्वती के रूप में श्रद्धा प्रगट हुई। तत्त्व तो वोही है। हमारी चेतना बहिर्मुखी होती है तब उसको शास्त्रीय नाम दिया जाता है बुद्धि और यही चेतना अंतर्मुखी होती है तब उसको नाम दिया जाता है श्रद्धा। एक ही चेतना के ये आयाम है। जीवन की किसी भी घटना में प्रधान गुणातीत श्रद्धा होनी चाहिए। तो, पार्वती के प्रागट्य से हिमालय अत्यंत समृद्ध हुआ। एक दिन नारदजी आ गये बिन बुलाये। उसने नामकरण संस्कार किया। पार्वती का भविष्य भाखा और कहा, तप करे तो उसके वर के रूप में शिव प्राप्त होंगे। फ़िर पार्वती कठिन तप करती है। तप के फलस्वरूप शिव से उनका ब्याह होता है।

> साहब, कोई भी शास्त्र थोड़ा फल दिखायेगा कि ये करो, ये करो, ये करो ताकि हम आगे जाय। बाकी जिस तरह से मैं 'मानस' पढ़ता हूं और जिस तरह से मैं आप से कहना चाहता हूं उसमें प्लीज़, कोई भी आकांक्षा रखे बिना काम करो। मेरे भाई-बहन, कोई भी अपेक्षा के बिना 'मानस' का पाठ करो। प्लीज़, हो सके तो शास्त्रश्रवण, शास्त्रदर्शन, शास्त्रपठन हेतु से मत करो, हेत से करो। शास्त्र फल नहीं देता, शास्त्र रस देता है। मैं कथा गाता हूं, सही में ओलरेडी रस मिलता है। आप सुनते हो तो आप को रस मिलता होगा वर्ना बार-बार क्यों मुझे सुनते हो?

प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है

'मानस-पुन्यपुंज', जिसकी अधिक मास में कुछ अधिक चर्चा हो रही है। कुछ बातें जो पूछी गई है वो लूं इससे पहले जो कल की बात पर एक मेरे श्रोता ने कहा कि मैं जाऊं; अब एक बार 'रामचरित मानस' का निष्कामभाव से पाठ करके देखूंगा। लेकिन जाने की बात नहीं है बाप! मेरा कहना मात्र इतना है कि मेरी कथा यानी रामकथा मैं जिस ढ़ंग से पेश कर रहा हूं वो धर्मशाला नहीं है, प्रयोगशाला है। मैं दिल से कहता हूं, मैं प्रयोग कर रहा हूं। यदि इस प्रयोगशाला में आप को कोई प्रसन्नता प्राप्त हो। आज एक चिठ्ठी में लिखा है कि 'बापू, मैं आप की कथा सुनता हूं, लेकिन सुनते ही आंसू आना शुरू हो जाते हैं।' ये तो कथा का फल है। ये तो कितना बड़ा भाग्य है! हम ये मान बैठे हैं कि आंसू का आदमी के सुख-दु:ख के साथ नाता है। अध्यात्मजगत की दृष्टि से, अनुरागजगत की दृष्टि से आंसू का सुख और दु:ख से कोई लेना-देना नहीं है। आंसू का लेना-देना है केवल, केवल, केवल भाव और अनुराग के साथ; आनंद के साथ। हमें आदत हो गई है कि कोई रोता है तो हम को लगता है अरे, बेचारा कितना दु:खी होगा? लेकिन कथा में रोना इसका सुख-दु:ख से क्या लेना-देना? ये रोना तो आनंद का है। ये भावदशा का रोना है। यही तो हमें मिलना चाहिए। सुख दे तो भी रोना आ जाये, दु:ख दे तो भी रोना आ जाये! ये हमारी व्याख्या है। कथा आनंद देती है, सुख-दु:ख कहां देती है? यदि इस आनंद को आप सुख का नाम दो तो ठीक है। और रोना कितनी बड़ी अच्छी बस्तु है! कई लोग ऐसे हैं, सुख में हंस भी नहीं सकते हैं! रोने की तो दूर बात! रोना तो कृष्ण की प्रसादी है। रोना तो राधा का वरदान है। रोना ये तो वृंदावन पर रही हम सब की शुभकामना है। रोना ये चित्रकूटी वरदान है। इसीलिए रोना आ जाये ये तो बहुत अच्छी बात है। मैं चाहता हूं, आप रूखे-सूखे न रहे। आप गिले रहे। अल्लाह करे, आप की आंख में ये प्रेम का आंसू सदा रहे।

निश दिन बरसत नैन हमारे...

क्या कृष्ण ने हमें सुख दिया भौतिक रूप में? और दु:ख देने का उनका स्वभाव नहीं है। कृष्ण को 'भगवद्गीता' में 'योगेश्वर' कहा, इतना ही नहीं; 'महायोगेश्वरो हरि' कहा है। ये महायोगेश्वर है। वो हमें आनंद देता है। सद्गुरु क्या देता है? बुद्धपुरुष क्या देता है? सुख देता है? सुख ये आप के प्रारब्ध और पुरुषार्थ के परिणाम हो सकता है। दु:ख ये भी अपने कर्मजनित फल हो सकता है। बुद्धपुरुष देता है आनंद के आंसू, प्रेम के आंसू। मुझे वो लोग बहुत गरीब लगते हैं जो कभी रो नहीं पाते हैं! ये कथा इसीलिए है कि हम भीतर से समृद्ध हो। इसीलिए यहां से मैं कहूं कि 'जाओ' इसका मतलब ये है, मेरी कथा यदि आप को कुछ दे न पाये तो आप समय बरबाद न करे। ये प्रयोग है। कृष्ण आनंद देता है। कृष्ण प्रेम देता है। कृष्ण प्रसन्नता देता है। कृष्ण पवित्रता देता है। और पुन्य का एक अर्थ है पवित्रता। पुन्य का एक अर्थ है उत्तम कर्म। एक उच्चतर श्रेठ विचार पुन्य है। उत्तम कर्म पुन्य है। अपने को कायम प्रसन्न रखना पुन्य है।

याद रखना, प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है। इसीलिए प्रसन्न रहियो। औरों को प्रसन्न रखियो। अप्रसन्न न रहियो, औरों को कभी अप्रसन्न हो ऐसी जानबूझकर चेष्टा न करो। धर्म ने सिक्के लगा दिये कि ये पुन्य, ये पाप! बदलती रहती है व्याख्यायें! सत्जुग में ध्यान; त्रेता में यज्ञ; द्वापर में पूजा-अर्चा; कलियुग में केशव-कीर्तन, हरिकथा। यहां इस कथा में पुरुषोत्तम मास में, विशेष करके सहज जो पुन्य की चर्चा चल रही है गुरुकृपा से वो एक बिलग ढ़ंग के पुन्य की चर्चा है। आप जितना पवित्र रह सके, मैं और आप, हम साथ में है। 'आप' कहूं कि 'तुम' कहूं ये एक केवल बोलने की रीत है; बाकी मैं सदा आप के साथ हूं, साथ रहूंगा। आप कथा छोड़कर जाओगे तो कहां जाओगे? मैं पीछा करूंगा! मेरे पास आये हैं तो कोई चारा नहीं है! अब फंस गये हैं! यहां केवल एन्ट्री है, एक्झिट है ही नहीं!

मुझे डोक्टर (यजमान) कल कह रहे थे कि बापू, आपने कोई कथा में ऐसा कहा कि आप मकान बनाये तो बिलग-बिलग कमरे बनाते हो। ड्रोईंग रूम, डाईनिंग रूम, मास्टर बेड़ रूम, गेस्ट रूम, एक लायब्रेरी, फल्लां, फल्लां...तो अपने घर में यदि अनुकूलता हो तो एक रूम ऐसा बनाओ जिसका नाम रखो शून्य रूम। जहां कुछ न हो। बिलकुल एम्प्टी; नितांत शून्य। और डोक्टर ने ये किया है। लेकिन एक सुधार मैं डोक्टर को जरूर कहूंगा। उसने कहा कि मैंने ऐसा एक कमरा रखा है उसमें मैं थोड़ी किताब रखता हूं और मैं होता हूं; दूसरे बापू, आप होते हैं। घटना तब घटेगी जब मुझे भी निकाल दोगे। मुझे निकालना पड़ेगा। मैं जब तक रहूंगा, आप की बाधा बनूंगा। मैं बहुत दिल से कह रहा हूं। कोई ऐसी सीख नहीं देगा। मेरा फोटो बाधा बने, फोटो निकाल देना, प्लीज़। भक्ति को एकांत चाहिए। एकांत मानी मैंने कई बार इसकी व्याख्या की है, एकांत का अर्थ है एक का भी अंत हो जाय। कोई न रहे।

मानस पुन्य होहि नहीं पापा।

तुलसी कहे, कलियुग का एक विशेष स्वभाव है; आप मानसिक रूप में शुभ सोचोगे तो पुन्य कमाओगे, मानसिक रूप में खराब सोचोगे तो फल नहीं मिलेगा। ये विशेष एक राहत दे दी गई कलियुग में। आप कुछ करो ना, आप मानसिक रूप से सोचो कि मेरे पडोशी का बहुत अच्छा हो; कोई बीमार है उसका अच्छा हो, उसका पुन्य मिलेगा। कुछ किया नहीं आपने। न दवा दी, न उनके घर गये, न आंसू पोंछे। लेकिन केवल मानसिक रूप से उत्तम विचार पुन्य है। श्रेष्ठ कर्म पुन्य है। मन की पवित्रता जितने समय तक रहे, पुन्य है। हम स्वच्छ है, पवित्र नहीं है। वी आर क्लीन, नोट प्योर।

'रामायण' के प्रसंगों को आप मज़ाक समझते हैं? ये कोई फन्नी वार्तायें हैं? मेरा राम कभी छोटे-छोटे बंदर-भालूओं से विनोद करे ये राम का बड़प्पन है। जब राम के पास 'बुद्धिमतां वरिष्ठं' हनुमानजी बैठे हैं। जगत का सब से श्रेष्ठ जागृत पुरुष लक्ष्मण बैठा है। भगवान ने जिसको सज्जनता का प्रेमपत्र प्रदान किया है, 'साधु' शब्द जिसके लिए लगा दिया है ऐसा विभीषण भी संग में बैठा है। और जिस सुग्रीव से हनुमानजी आज्ञा मांगते हैं, वो सुग्रीव बैठा है और बड़ा अनुभवी वयोवृद्ध जामवंत भी बैठा है। इनके साथ भगवान कोई फन्नी बात करे कि चंद्रमाँ में काला दाग क्या है? क्या समझते हैं 'मानस' को आप? ये कोई बालवार्ता है?

मैंने दादाजी से बहुत कम प्रश्न किये हैं। मैंने दुनिया में किसी से प्रश्न नहीं किया है। मेरे दादा से कभी-कभी किया है। ये तो निजी बात है लेकिन लोग दो

दिन से कहते हैं कि बापू, कभी-कभी बीच में दादा के कोई स्मरण हो तो हमें बताना। मेरे जीवन का एक अनुभव है। दादाजी के साथ मेरी सहजता बहुत रहती थी। बिलकुल सहजता। एकदम फ्री रहता था मैं। पिताजी के पास थोड़ा अनुशासन में रहना पड़ता था। वैसे मेरी माँ सावित्री माँ के साथ मैं बिलकुल सहज रहता था। लेकिन दादीमाँ अमृतमाँ के साथ जरा अनुशासन में रहता था। बहुत छोटा था। तो बात चली, ये प्रसंग चला कि भगवान ने ऐसी सुंदर वार्ता, अब उस समय तो मुझे बालवार्ता जैसा ही लगा कि ये क्या है? ये चंद्रमाँ में काला दाग क्यों है? जैसे हमारे गांवो में देहातों में कहते हैं कि चंद्रमाँ में एक डोशी बैठी है, वो रेंटिया कांतती है! कहां 'रामचरित मानस' जैसा कैलासी ग्रंथ! प्रयागी ग्रंथ! नीलगिरि की ऊंचाई का ग्रंथ! और तुलसी से मानस से निकला ये पवित्र शास्त्र। तो स्मरण आ रहा है। तो दादा ने कहा कि बेटा, ये वार्ता नहीं है। शास्त्रों में मन को चंद्रमाँ कहा है। भगवान इन बुद्धिजीवीओं से कहते हैं, तुम्हारे मन में काला दाग क्या है वो बताओ। कौन-सी छाया है हमारे मन पर जिसने हमारे मन की पवित्रता छिन ली और कलंकित कर दिया? कौन छाया ने हमारे मन को अपवित्र किया है? ठाकुर पूछते हैं, कौन-सा छिद्र है हमारे मन में जो काला धब्बा महसूस कराता है। किस विकार ने लात मारी हमारे मन को कि हमारे मन को कलंकित कर दिया है। कौन है ये राहु? कौन है किसीको खूरसूरत करने के लिए हमारे मन का सत्त्व को चुराकर ले गया है? एक रति को सुशोभित करने के लिए किसने हमारी रति को छिन ली और हमारा मन कलंकित हुआ? अब ये सब पता लगता है कि क्या संपदा दी थी! गुजराती मां कहुं तो खडियो खाली करी नांख्यो'तो! फकीर बन गये। जैसे ठाकुर रामकृष्ण ने कहा था, विवेक, मैं तुम्हें सबकुछ देकर फकीर होकर जा रहा हूं।

ये कोई वार्तायें है क्या? इसीलिए मैं कह रहा हूं कि पवित्रता ये पुन्य है। सोचो, हमारे मनरूपी चंद्रमाँ में ये कलंक है; ये पवित्रता की कमी किस कारण? कौन छाया पड़ गई हमारे मन पर? किसने ऐसी कुसंग की छाया डाल दी? कौन ख़राब कंपनी हमें प्राप्त हुई कि मन जरा म्लान हुआ? हमारे मन ने कौन-सा ऐसा गलत काम कर दिया कि छिद्र हो गया, सत्त्व टिका नहीं? किस विकार ने हमारे मन को मारा? महामुनि विनोबाजी का एक वाक्य है कि अतीत का स्मरण करते रहना ये मन का लक्षण है और वर्तमान में उस मन को दीक्षित करना ये मन का शिक्षण है। 'मानस'की कथा को कृपया वार्ता मत समझो। ये अद्‌भुत शास्त्र है। ये कैलासी शास्त्र है। मैं और आप तलाश करें। हम स्वच्छ हैं, पवित्र कितने हैं? और जितना समय हम पवित्र हो, ये पुन्य है। घृणा-नफरत पाप है, प्रेम परम पुन्य है।

तो पुन्य मानी ये छोटी-बड़ी पुन्य की बात नहीं है कि किताब किसीको दे दो, नोटबुक किसीको दे दो, किसीकी फीज़ भर दो। अच्छा है देना। ये सब करना, प्लीज़। लेकिन असली पुन्य को हम चुक न जाय। मेरा कहना ये है कि यदि कथा से आप को पवित्रता न मिले, आप प्रसन्न न रह सके तो मैं आप का समय बिगाड़ना नहीं चाहता। मुझे भी छोड़ो! और मैंने कहा कि ये सब छूट जाय इसका मतलब बिलकुल सामान्य तरह से मत लेना कि नहीं, अब कथा छोड़ दो! तुम उस लेवल पर जाओ तब की ये बात है।

बुद्धपुरुष वो है जो तुम्हें तुम बनाकर छोड़ दे। वो बाधा न बने। रामकृष्ण बीच में कालि आये तो कालि का सिर काट दे! अब ना समझ इसका क्या अर्थ करे कि देव को काट देना! शास्त्र को काट देना! गुरु को काट देना! अब इनका कोई सामान्य अर्थ ले ले तो क्या होगा? बहुत गलतफेहमी हो जायेगी! सच्चा बुद्धपुरुष वो है जो चेले को जब तक गुरु न बना दे तब तक छोड़े ना। अब क्या है दुनिया में, तथाकथित गुरु समाज में चेला बनाने की होड है! सच्चा गुरु ये है जो चेले को गुरु बना दे। संन्यास में ऐसा नियम है कि संन्यास की जब दीक्षा दी जाती है किसीको तब एक विधि है कि गुरु जिसको मुंडा है उसके भाल में चंदन करके उनके सिर पर फूल रखकर उसकी पूजा करता है। 'त्वमेव ब्रह्मास्मि।' ये मंत्र बोलना पड़ता है। 'आज से तू ब्रह्म है।' गुरु चेले की पूजा करता है। ऐसा चिंतन हिंदुस्तान के सिवा कोई मूल्क नहीं कर सकता। गुरु से बड़ा कौन? उनका चेला। चेला गुरु का

गुरु है, ये केवल हिन्दुस्तान कह सकता है। गुरु व्यक्तिवाद नहीं, ये एक गंगा की धारा है, प्रवाह है, जहां शिष्य को गुरु माना जाता है।

तो, प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है। और प्रसन्नता हमारा स्वभाव है। 'रामचरित मानस' में एक शब्द है 'घनघमंड।' 'घन' मानी जथ्था। बादल जब भर जाते हैं, आदमी जब कुछ वस्तु से भर जाते हैं तो घमंड आये बिना रहता नहीं। रावण बैठा था अपने अखाड़े में और भगवान ने कहा, विभीषण, ये लंका में क्या वर्षा ऋतु है? 'घन' के साथ 'घमंड' क्यों जोड़ा? क्योंकि बरसने का भी आदमी को घमंड होता है कि मैंने इतना पुन्य किया, मैंने इतना दान किया, उसका भी एक घमंड होता है।

माला के लिए एक धागा चाहिए। बाकी मणकें हैं। हम और आप मणकें हैं। समूह में बैठे हैं, लेकिन किसके आधार पर बैठे हैं? कोई एक धागा पिरोया हुआ है। कोई है, जो हमें जोड़े रखे हैं। ये छोटे-छोटे बच्चे को मैं देखता हूं तो मैं सोचता हूं कि इनके साथ मेरा क्या लेना-देना है? छोटे-छोटे प्यारे बच्चे जब 'बापू', 'बापू' करते हैं, तो मुझे तो लगता है कई जनम के मेरे श्रोता रहे होंगे! माला के लिए चाहिए धागा। और ये है प्रेम का धागा। ये प्रसन्नता का धागा जो हमें पिरोये रखता है।

'बापू, बे कथा पहेलां तमे कीधेलुं के मने श्रवण करे तेवा कान जोईए छे। तो अमे एवा कान बनवा माटे शुं करीए?' आप आदर के साथ सुनते हैं, जिसको मैं सुनने का विज्ञान कहता हूं। सुनने का सायन्स कहता हूं। आप ने ठीक से सुना होगा तो दो कथा के पहले मैंने जो बात कही वो आप को याद है! सच कहूं? मैं जो कथा में बोल जाता हूं, दूसरे दिन मुझे पता नहीं होता! एक कथा के बाद तो मुझे पता ही नहीं कि मैं क्या बोल के आया हूं? मेरे श्रोता को पता है, क्योंकि आप के पास एक इयर सायन्स है। एक श्रवण विज्ञान है ताकि आप पकड़ रखे। कान तो माध्यम है। बात आप के दिल तक पहुंचती है इसीलिए याद रह जाती है। तो जरूर आप के पास कान है। लेकिन और कान अच्छे हो।

'जय सीयाराम' बापू, मैं बनारस का रहनेवाला हूं। दो प्रश्न है मेरे। पहला प्रश्न है क्षमा से संबंधित। कोई व्यक्ति शारीरिक, आर्थिक, मानसिक, पारिवारिक क्षति पहुंचाये ऐसी व्यक्ति को किस प्रकार क्षमा किया जाय? दूसरा प्रश्न, रावण कितना बड़ा विद्वान था जब उनका वध हुआ युद्ध में राम के द्वारा तो राम ने उनको क्षमा क्यों नहीं किया?' दो शब्द है, एक 'क्षमा' और एक 'न्याय।' 'मानस' के आधार पर यदि मैं जवाब दूं तो ये कह सकता हूं कि समर्थ के साथ न्याय होना चाहिए, असमर्थ के साथ क्षमा होनी चाहिए। रावण समर्थ है इसीलिए उसके साथ न्याय हुआ। और दूसरी ओर से देखे तो बहुत बड़ी क्षमा करके प्रभु ने रावण को अपने रूप में समाहित कर दिया। तो यदि कोई समर्थ आदमी शारीरिक, मानसिक या आर्थिक नुकसान करे तो न्याय करना चाहिए व्यवहारु दृष्टि से। बाकी कोई असमर्थ है जो जाने-अनजाने कुछ कर गया तो फ़िर उसको मेरी समझ में क्षमा कर देना चाहिए।

'बापू, समर्थ तो स्वीकार अने सहन करी शके पण असमर्थ बळ कई रीते मेळवी शके?' असमर्थ को सहन करने का बल मौन और हरिनाम। हरिनाम से बल मिलेगा, ये मेरा अनुभव है। 'हारे को हरिनाम।' आंसू भरी पुकार बहुत बल प्रदान करेगा। और मौन।

'बापू, आपे जे धर्मद्रोहीने सजा मळे अे वात कही। 'रामचरित मानस'मां रावण धर्मद्रोही, ढ़ोंगी गणाय ऐने काळा पाणीनी सजा आपवी के नहीं?' अब मरणोत्तर कैसे केस चलाया जाय? लेकिन रावण ने यदि द्रोह किया चलो, लेकिन कारण क्या है? तुलसीदासजी ने दो फोर्म्यूला दिखाई कि मूल में सब अच्छे हैं।

ईश्वर अंस जीव अबिनासी ।
चेतन अमल सहज सुखरासी ।।

हम परमात्मा के अंश होने के नाते मूलत: हम सब शुद्ध-बुद्ध है। फ़िर भी कोई धर्मद्रोही निकलता है, कोई कुछ निकलता है! कारण क्या है? 'मानस' कोई जवाब दे सकता है? तो मैं कहूंगा, दे सकता है। मैं पहले आप को प्रश्न पूछुं कि दशरथ अगले जनम में कौन था? 'मानस' के आधार पर दशरथ कौन थे? मनु। ठीक है? और

दशमुख रावण अगले जनम में कौन था? प्रतापभानु। ठीक है? अब मनु जितना अच्छा आदमी है 'रामायण' में इतना ही अच्छा आदमी प्रतापभानु है। आप कम्पेर कीजिएगा।

स्वायंभू मनु अरु सतरूपा ।
जिन्ह तें भै नरसृष्टि अनूपा ।।

मनु से हम मनुष्य कहलाये। लेकिन मनु दशरथ हुआ। इतना ही शुद्ध-बुद्ध प्रतापभानु, सत्यकेतु का बेटा। लेकिन वो रावण हुआ! मूल दोनों का समान है। लेकिन जीवन की जो अवतरण की प्रक्रिया है उसमें भेद है। मनु से दशरथ बनने की प्रक्रिया भी 'रामचरित मानस' ने दी। और प्रतापभानु जैसे शुद्ध से रावण दशमुख बनने की प्रक्रिया थी 'मानस' ने बताई। मनु ने सब से पहले क्या किया? फ़िर दूसरे जनम में वो दशरथ बने। पहले उसने बहुत सत्कर्म किये। फ़िर सत्कर्म करते-करते इतना ये अच्छा राजा सिद्ध हुआ। उनका पूरा खानदान इतना अच्छा रहा। लेकिन मनु को एक विचार आने लगा; एक दिन उसके मन में हुआ कि 'होइ न बिषय बिराग।' मुझे बिराग नहीं आ रहा है। 'मानस' का अद्‌भुत दर्शन है। जीवन में वैराग आ जाये इसके समान कोई उपलब्धि नहीं लेकिन मनु की समस्या ये है कि वैराग नहीं आया। तो उसने वैराग न आया तो चलो थोड़ा त्याग करो। इसीलिए परिवार को सब दे दिया। वैराग आने में देर लगे तो आदमी को चाहिए त्याग से शुरू करे। ये पूरी फोर्म्यूला है दशरथ होने की। क्योंकि वैराग क्रिया नहीं है, स्वाभाविक है। लेकिन वो स्वाभाविक न बने तो आदमी को धीरे-धीरे प्रेक्टिस करनी चाहिए कि मैं छोडूं। उपनिषद त्याग तक गये। 'मानस' वैराग तक गया। वैराग की बात कही। उपनिषदों ने कहा, एक मात्र त्याग से आप को अमृत की उपलब्धि होगी। लेकिन मनु ने सोचा कि वैराग आये तो बहुत अच्छा। लेकिन वैराग नहीं आ रहा है। क्या करूं? हृदय में पीड़ा हुई। और बहुधा आदमी को त्याग दुःख में से ही निकलता है। उसको लगा कि मेरा जीवन भक्ति के बिना जा रहा है। वैराग नहीं हो रहा है। इसीलिए त्याग शुरू कर दिया। तो सब कुछ छोड़कर मनु पत्नी के साथ निकल गया। ये दशरथ होने की प्रक्रिया है। जीवन और मृत्यु सफल करना हो तो दशरथ होना जरूरी है। और दशरथ होने के लिए ये फोर्म्यूला जरूरी है। निकल पड़े दोनों।

पहुँचे जाइ धेनुमति तीरा ।

कहां गये? नैमिषारण्य में गये, 'धेनुमति तीरा।' गोमती के तट पर गये। गोमती मानी गाय, धेनु। और तुलसीदासजी ने धेनु को श्रद्धा कहा है। दशरथ होना है तो पहले श्रद्धा के तट पर जाना पड़ेगा। फ़िर? महात्माओं के संग में जाने लगे। रोज वेद-पुराण की कथा सुनते हैं। पहले श्रद्धा। उसके बाद सत्संग। जहां कोई अच्छी बातें होती है, शुभ चर्चायें होती हो वो सुने। और उसके बाद? केवल सुने इतना नहीं। द्वादश अक्षर का मंत्र पति-पत्नी जप रहे हैं। बस, इतनी ही दशरथ होने की फोर्म्यूला है। इतना ही हम करें धर्मधुरंधर होने के लिए। श्रद्धा, सत्संग और हरिनाम का जप, बस।

अब रावण। रावण का मूल भी शुद्ध। सत्यकेतु का बेटा प्रतापभानु। कितना यज्ञ करता है! वासुदेव को अर्पण करता है। बाप ही सत्यकेतु है। और अंधेरा तो है ही नहीं, प्रतापभानु है। सूरज जैसा उसका प्रभाव है। लेकिन अब देखो, रावण की प्रक्रिया शुरू हो रही है। एक दशरथ, एक दशमुख। मुख भोग का प्रतीक है। रथ इन्द्रियों के नियंत्रण का प्रतीक है। मेरी समझ में अभी तक नहीं बैठता कि रावण के पास इतना था फ़िर भी उसने सीता की चोरी क्यों की? इसका मतलब है कि दुनिया की दृष्टि से सब कुछ था, अंदर से कुछ नहीं था! चोरी का धंधा तो वो ही करे कि जिसके पास अभाव हो! और हमारी भी यही दशा है कि सब कुछ होते हुए अंदर से भीखमंगे हैं! इनके भवन में सुंदरीओं की कोई सीमा नहीं थी। ये परछांई पकड़ने निकले? ये भीतरी कंगालियत का प्रतीक है।

प्रतापभानु बहुत अच्छा राजा। बाप अच्छा। लेकिन एक बार वो मृगया करने के लिए जाता है। मृगया किया। हो गई बात! लेकिन फ़िर एक भूंड़ दिखाई दिया, सूकर। सूकर देखकर प्रतापभानु को हुआ कि उसकी भी शिकार करूं। रावण बनने की प्रक्रिया शुरू होती है लोभ से। इतना किया तब भूंड के पीछे क्यों भागा जा रहा है? वन में गये? दशरथ होना है तो नैमिषारण्य। दशमुख होना है तो विंध्याचल। ये रूपक है। फ़िर लोभ कहता है कि लोग हमारी परिकम्मा करें। हमारी वाह-वाह करे। फ़िर क्या होता है? मैं अकेला काफ़ी हूं। सेना को प्रतापभानु ने कहा, मैं अकेला काफ़ी हूं, तुम जाओ।

अति अकेल बन बिपुल कलेसू ।
तदपि न मृग म तजइ नरेसू ।।

तुलसीदासजी शब्द यूझ करते हैं, 'अति अकेल।' आदमी कभी अकेला नहीं होता है, ईश्वर उनके साथ ही होता है। लेकिन अत्यंत लोभ शुरू होता है तब ईश्वर भी उसके पास से हट जाता है। और ऐसे में विंध्याचल में 'अति अकेल' हो जाता है। तो लोभ, प्रशंसा की भूख, फ़िर मुझे किसीकी जरूरत नहीं, मैं अकेला काफ़ी हूं ये वृत्ति। और उसके बाद कुसंग। कपटमुनि मिल गया! और ये कुसंग हुआ इसी फोर्म्यूला से रावण पैदा हुआ। एक धर्मधुरंधर पैदा हुआ। एक धर्मद्रोही पैदा हुआ। हमारा मूल सत्यकेतु का है। हमारा मूल प्रतापभानु का है। हमारा मूल मनु का है लेकिन दोनों प्रक्रिया भिन्न होने के कारण कभी हम दशरथ बन जाते हैं; कभी हम दशानन बन जाते हैं।

सुग्रीव की बात भी पूछी है। अभी मैंने बीच में चर्चा कर ली कि सुग्रीव का पुन्य क्या है? हनुमानजी तो पुन्यपुंज है लेकिन इतना पुन्यपुंज हनुमान जिसकी सेवा करे सुग्रीव की और सुग्रीव की आज्ञा मांगे कि अब मैं अयोध्या में रहूं? और सुग्रीव उसको आज्ञा दे। तो सुग्रीव का पुन्य क्या है? सुग्रीव वैसे भागेडु आदमी है। लेकिन एकमात्र पुन्य है कि उसको पता लग गया कि रहना कहां चाहिए? कहां वास करना ये समझ जाना पुन्य है। ऋष्यमूक पर्वत पर निवास करने लगा, जहां कोई कर्म नहीं पहुंच पाता। मेरे भाई-बहन, किस जगह में निवास करना वो भी पुन्य हैं। चाणक्यनीति में ऐसा लिखा है कि पांच जगह रहना अच्छा है। मेरे भाई-बहन, इस पांच जगह में रहना पुन्य है। जहां धनिक हो वहां रहना। धनिक का मेरा अर्थ पैसा नहीं, द्रव्य नहीं। जहां दिव्यता हो, वहां रहना ये पुन्य है। वातावरण सात्त्विक हो, वहां निवास करना पुन्य है। दूसरा, जहां कोई संत हो, साधु हो, जिसके पास बैठने से सत्संग होगा। तीसरा, जहां कोई राजा हो। ऐसे आश्रय में रहना जहां हमारी सुरक्षा हो, हमारा पोषण हो, हमारा शोषण न हो, वो पुन्य है। चौथा, जहां नदी हो। जहां भावप्रवाह बहता हो। वहां रहना पुन्य है। और जहां वैद हो। 'सद्‌गुरु बैद बचन बिस्वासा।' जहां हमारे मानसिक रोग का इलाज हो। हमारे मनोविकारों का शमन हो वहां रहना पुन्य है। ऐसा एक 'पुन्यपुंज' शब्द 'मानस' में आया हैं-

पुन्यपुंज मग निकट निवासी ।
तिन्हहि देव सर सरित सराहहिं ।।

तुलसी कहते हैं, जिस रास्ते से राम निकले हैं और इस रास्ते के निकट जो गांव में रहते हैं वो सब पुन्यपुंज है। इन्द्रलोक में और स्वर्ग में रहनेवाले भी राम के रास्ते पर निवास करनेवाले लोगों को पुन्यपुंज कह करके उसकी सराहना करते हैं। जो सत्य का मारग हो, जो प्रेम का मारग हो, जो करुणा का मारग हो, ऐसी जगह रहना उसको तुलसीदासजी ने पुन्यपुंज निवासी कहा है। अच्छी जगह में रहना ये पुन्यपुंज की निशानी है।

पुन्य का एक अर्थ है पवित्रता। पुन्य का एक अर्थ है उत्तम कर्म। एक उच्चतर श्रेठ विचार पुन्य है। उत्तम कर्म पुन्य है। अपने को कायम प्रसन्न रखना पुन्य है। याद रखना, प्रसन्नता पुन्य है, अप्रसन्नता पाप है। इसीलिए प्रसन्न रहियो। औरों को प्रसन्न रखियो। अप्रसन्न न रहियो, औरों को कभी अप्रसन्न हो ऐसी जानबूझकर चेष्टा न करो। आप कुछ करो ना, आप मानसिक रूप से सोचो कि मेरे पडोशी का बहुत अच्छा हो, कोई बीमार है उसका अच्छा हो, उसका पुन्य मिलेगा। केवल मानसिक रूप से उत्तम विचार पुन्य है। श्रेष्ठ कर्म पुन्य है। मन की पवित्रता पुन्य है। हम स्वच्छ है, पवित्र नहीं है। वी आर क्लीन, नोट प्योर।

कथा-दर्शन

- 'रामचरित मानस' स्वयं सद्गुरु है।
- मेरी रामकथा बिनसांप्रदायिक कथा है।
- धर्म तो जीव को मुक्तता प्रदान करता है।
- शास्त्र फल नहीं देता, शास्त्र रस देता है।
- प्रसन्नता परमात्मा का पर्याय है।
- प्रामाणिकता के बिना आदमी पवित्र नहीं रह सकता।
- बुद्धपुरुष देता है आनंद के आंसू, प्रेम के आंसू।
- बुद्धपुरुष का व्यक्तित्व एक होता है, वक्तव्य बहुत होते हैं।
- गुरु व्यक्तिवाद नहीं, ये एक गंगा की धारा है, प्रवाह है।
- प्राप्ति के लिए भी पुकारना मत। पुकार के लिए पुकारो।
- किसी से किसी भी प्रकार की अपेक्षा न रखना पुन्य है।
- परमात्मा अवसर दे तो बदला मत लेना। हो सके तो बलिदान दे देना।
- प्रभाव के पर्दे को हटाकर हमें हमारे स्वभाव में स्थिर करे वो साधु।
- मुस्कुराहट ही सुख है ऐसा नहीं, आंसू भी सुख है।
- सत्कर्म का अहंकार सत्कर्म की फलश्रुति का बाधक है।
- ठाकुर-सेवा और संत-सामीप्य दोनों पुन्यपुंज के बिना संभव नहीं।
- शास्त्रश्रवण, शास्त्रदर्शन, शास्त्रपठन हेतु से मत करो, हेत से करो।
- दंभ हमारी आध्यात्मिक यात्रा की बहुत बड़ी बाधा है।
- शरणागति एक की ही होती है और अंतिम होती है।
- आदमी कभी अकेला नहीं होता है, ईश्वर उनके साथ ही होता है।
- समर्थ के साथ न्याय होना चाहिए, असमर्थ के साथ क्षमा होनी चाहिए।

मानस-पुन्यपुंज

॥ ६ ॥

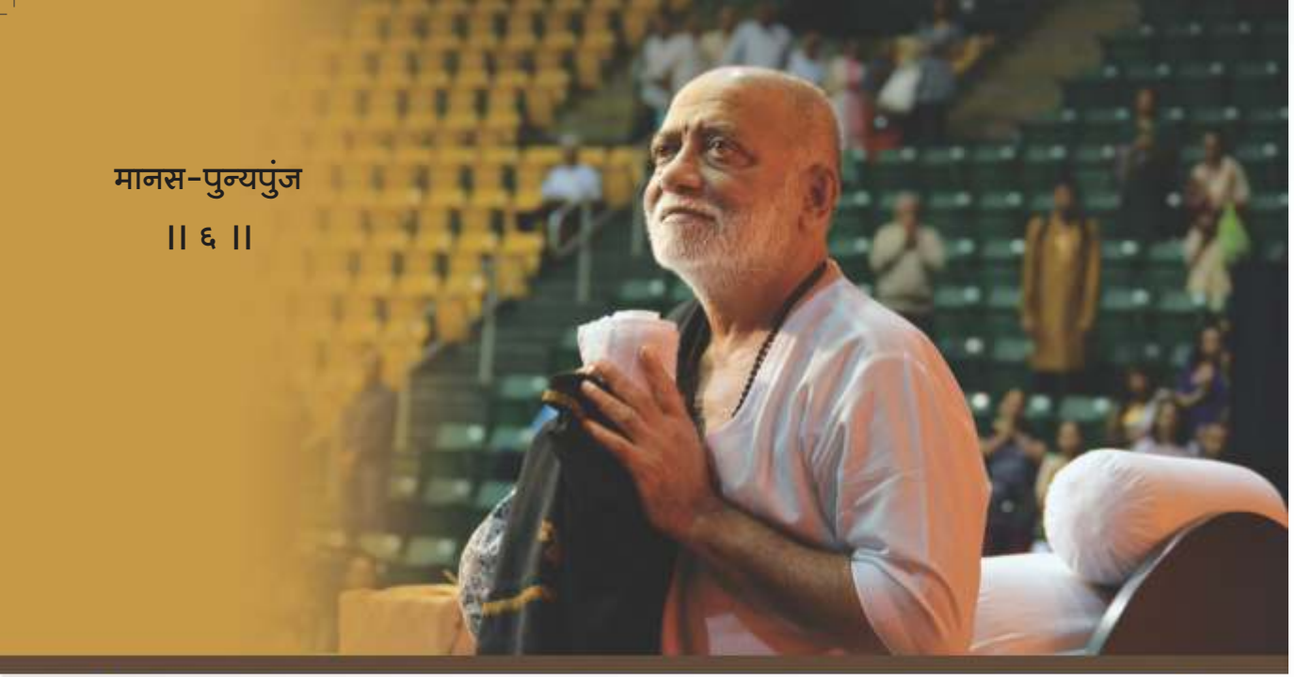

सद्गुरु की आंख ही शिष्य के लिए मंदिर है, गुरुद्वारा है

'मानस-पुन्यपुंज', जिसके बारे में हम मिलकर बातें कर रहे हैं। कुछ प्रश्न हैं। एक श्रोता ने लिखा है कि 'मैंने निश्चय किया है कि इस अधिक मास में और इससे पहले मैंने जो भी कुछ पुन्य किया हो तो वो समस्त पुन्य एक अमरिकन युवान जो केन्सर से पीड़ित है उसको केन्सर की पीड़ा में राहत मिलें इसीलिए मैं केन्सर पीड़ित युवान को समर्पित करता हूं।' अपना सद्भाव, अपनी शुभकामना उसने व्यक्त की। बहुत-बहुत धन्यवाद।

'आइ हेव टु क्रेश्चन्स फोर यू। आइ-वी से 'रामचंद्र प्रिय हो', शुड वी ओल्सो से 'प्रिय सीयाराम?'' यस, आप कह सकते हैं, 'जय सीयाराम' के बदले 'प्रिय सीयाराम।' 'आइ हेव डिफिकल्टी कन्ट्रोलिंग माय एन्गर। आइ नो धेट बीइंग अप्रसन्न इझ अ पाप। हाउ डु आइ एडजस्ट माय स्वभाव?' बहुत डिफिकल्ट है अपने गुस्से के कारण। और कल की कथा में कहा कि अप्रसन्नता पाप है। तो पूछा है कि मैं किस तरह एड़कजस्ट करूं मेरे स्वभाव को? मूल स्वभाव जरा वो करना बहुत कठिन है फ़िर भी आप सत्संग करते हैं, कथा में इतना आदर रखते हैं तो कथा से जो विवेक प्राप्त होता हो इससे थोड़ा कन्ट्रोल करने की कोशिश करे।

मैं यहां इस कथा के लिए डोक्टरसाहब के घर ठहरा हूं। तो जिस कमरे में मैं हूं उस कमरे में पंखा किस स्विच से चलता है, लाईट कौन स्विच ओन करने से जलती है ये मैंने जान लिया। ये पांच-दस मिनट में जिस कमरे में हम रहते हैं उसके बारे में जान लेते हैं। और फ़िर हमारे शरीर के अनुकूल कितना प्रकाश, कितनी हवा चाहिए हम अपने आप एडजस्ट कर लेते हैं। जीवन की करुणा ये समझो कि ये शरीर हमारा घर है और इसमें हम इतने सालों से निवास कर रहे हैं लेकिन हमें स्विच की ख़बर नहीं है! ये स्विच का विवेक यदि आ जाये। और मेरा मानना है कि ये स्विच कोई सद्गुरु सिखाता है। किसी बुद्धपुरुष के पास हम ये स्विच की जानकारी प्राप्त कर सकते हैं। आप को ये पीड़ा है, आप को ये पूछने की इच्छा हुई है, ये आप की ग्लानि को मैं आदर देता हूं। लेकिन विवेक से कोशिश करे कि धीरे-धीरे ये आप का स्वभाव बने। मेरी शुभकामना।

'इष्ट, गुरु, सद्गुरु इन सब पर कुछ प्रकाश डालें।' वैसे नाभाजी ने एक 'भक्तमाल' नामक ग्रंथ लिखा उसमें तो ये कह दिया कि ये सब जो है, ये शरीर चारों का बिलग-बिलग है, तत्त्वत: एक है।

भक्ति भक्त भगवंत गुरु चतुर्नाम वपु एक।

चाहे भक्ति हो, ईष्टदेव हो, भक्त हो, भगवान हो, शिष्य हो, ये सब बिलग-बिलग विग्रह है। तत्त्वत: एक है। कई लोगों को गुरु ही ईष्ट होता है। कई लोगों को गुरु सब कुछ है। मैंने तो ये भी मेरी यात्रा में देखा है कि कई लोगों को तो गुरु क्या, उनकी पादुका सब कुछ है। अथवा तो हम ईष्ट को भी गुरु मान सकते हैं। हमारा जो कोई ईष्ट हो, 'कृष्णं वंदे जगद्गुरुम्।' भगवान शंकर, 'तुम्ह त्रिभुवन गुरु बेद बखाना।' इसको भी हम गुरु मानते हैं। यदि गुरुभाव में आप की निष्ठा है तो। और सद्गुरु, मैंने कई बार कहा है कि उपनिषद में केवल जहां तक मेरी दृष्टि गई है, 'गुरु' शब्द ही है, 'सद्गुरु' नहीं है। 'सद्गुरु' शब्द मध्यकालीन संतों ने प्रस्थापित किया। कबीर, सुर, तुलसी इन सभी महापुरुषों ने 'सद्गुरु' शब्द का प्रयोग किया है एक विशेष पहचान के लिए। गुरु सच्चा ही होना चाहिए लेकिन कालांतर में ऐसा कुछ हुआ होगा कि पहचानने के लिए फ़िर सच्चा गुरु ऐसा लिखना पड़ा होगा। तो, अपनी-अपनी मानसिकता, अपनी-अपनी रुचि, अपनी-अपनी निष्ठा के अनुसार आप उनके साथ संबंध जोड़ देते हैं। लेकिन गुरु के बारे में या तो सद्गुरु के बारे में आप को ज्यादा प्रकाश चाहिए तो मैं आप से प्रार्थना करूं कि कबीरसाहब के एक पद पर आप बहुत चिंतन करे। मेरे कुछ प्रिय पदों में भी ये बहुत प्रिय पद है। और बहुत अनमोल पद है कि गुरु क्या है? गुरु किसको कहे? एक दो पंक्ति मैं आप के सामने रखूं-

साधो सो गुरु सत्य कहावै।
कोई नैनन में अलख लखावै।

कितनी प्यारी पंक्ति! 'कोई नैनन में अलख लखावै', मूर्ति में नहीं। तुम्हें मूर्ति में अलख लगा दे, अच्छी बात है। लेकिन कबीरसाहब ने बहुत बड़ा प्रकाश डाला कि वो सद्गुरु सत्य है जो कहीं हमें भटकाये ना। उनकी आंखों में ही हमें अलख की अनुभूति करा दे। उनको देखते ही पता लगे कि बस, यही आंख है बुद्धपुरुष की। यही आंख मेरी परमात्मा है। और मैंने कई बार कहा है कि बुद्धपुरुषों की आंखें अद्भुत होती है। आप ने 'नारदभक्तिसूत्र' पढ़ा हो तो इसमें लिखा है कि ऐसा महापुरुष एक तो दुर्लभ है। क्योंकि जिसकी आंख अलख से भरी हो ऐसे प्रभु को प्राप्त लोग ही धरती पर कम है। कैसे खोजे? बहुत कम है ऐसे लोग। और मान लो कि किसीने पहचान लिया कि कबीर है, नानक है, तुलसी है। कोई भी पीर-पयगंबर है। उसके बाद नारद एक शब्द का प्रयोग करते हैं 'अगम्य।' एक तो दुर्लभ है। मिल जाये, फ़िर अगम्य है। उनकी रहन-सहन में हमारी गम नहीं पड़ती। अलख महापुरुष के बारे में आप कोई निर्णय नहीं कर पाओगे, ये अगम्य है। कोई संकेतों से उसको पा ले, समझ ले, कोशिश करे। और तीसरा सूत्र नारदजी फ़रमाते हैं 'अमोघश्च।' यदि ये दुर्लभ पहचान लिया जाय, मिल भी जाय फ़िर भी आप डामाडौल तो रहोगे ही क्योंकि ये अमोघ है। अगम है, अगोचर है और अमोघ है। बहुत प्यारा शब्द है। यदि दुर्लभ मिल गया और उसकी हर हरकतों को हम समझ गए, इस अगमता को हमने पा ली तो उसका संग अमोघ है। 'अमोघ' का अर्थ है, आपके लिए फिर शेष करना बाकी नहीं रहेगा। हो गया।

गूर्जियेफ़ को मैं पढ़ रहा था। गूर्जियेफ़ अपने शिष्यों को कहता था कि तुम जो काम करना चाहो वो पूरी की पूरी शक्ति लगाकर करो। कोई मदद नहीं करेगा। जरा भी कचाश मत रखना। पूरी शक्ति लगा देना। और पूरी शक्ति लग गई और आपका प्रोजेक्ट पूर्णरूप में नहीं हुआ तब समझना, अब वो शक्ति तुम्हारी मदद में आएगी। हम हमारी आधी शक्ति में मदद मांगने लगते हैं! अध्यात्म कहता है, परमात्मा ने दिये मन, बुद्धि, चित्त, इन्द्रियां इनको अपने लक्ष्य के लिए पूरा लगा दे। उस लगाने के बाद फिर कोई हाथ आता है जो पूरा कर देता है। और साधक को लगता है कि अब जो आगे काम

हो रहा है ये मैं नहीं कर रहा हूं, मेरा गुरु कर रहा है। लेकिन जब तक हमारा हस्तक्षेप है, वो हाथ नहीं आता। इसीलिए अगम लगता है। फिर अमोघ हो जाता है। फिर जो चाहे वो पूरा होता है। तो, ऐसा महापुरुष सद्गुरु कहलाता है।

सद्गुरु की आंख ही शिष्य के लिए मंदिर है। सद्गुरु की आंख ही शिष्य के लिए गुरुआश्रम है। सद्गुरु की आंख ही शिष्य के लिए गुरुद्वारा है। ये आंख खुले तो समझो मंदिर के पट खुले। ये आंख बंद करे तो समझो शयन हो गया। फिर मुझे कोई आपत्ति नहीं वो चलचित्र की पंक्तियां लिखी हो कहीं के लिए अल्लाह जाने, लेकिन लागू तो यहां होती है। हम लोग गाते रहते हैं -

तेरी आंखो के सिवा दुनिया में रखा क्या है?
ये उठे सुबह चले ये झूके शाम ढले।
मेरा जीना मेरा मरना इन्हीं पलकों के तले।
तेरी आंखों के सिवा दुनिया में रखा क्या है?

कहीं भटकाये ना, कबीरसाहब कहते हैं। अपनी आंखों में ही अलख लखा दे, सो गुरु सत्य कहावै। आगे कबीरसाहब कहते हैं -

डोलत डिगे न बोलत बिसरे,
अस उपदेश दृढावै,
जप तप जोग क्रिया ते न्यारा,
सहज समाधि सिखावै, साधो...

एक शब्द अमृत है। हमको एक कथा में सूचना दी गई कि बापू की कथा हम सुनना चाहते हैं। बैठेंगे कथा में लेकिन बापू से कह देना कि कबीरसाहब का कोई पद न गाये। मुझे तो सूचना बाद में मिली। और अल्लाह करे, क्या हुआ! उस दिन मैंने कबीर से ही शुरू किया! आप कल्पना कीजिए, धर्म को हमने क्या कर दिया! खबर नहीं, हमने गुलाब की पंखुडियां तोड डाली! गुलाब को गुलाब ही रहने दे। मैंने एक पंखुड़ी तोड़ दी और इस पंखुड़ी को कह दिया, ये मेरा धर्म! एक दूसरा खिंचकर गया, इसने कहा ये मेरा धर्म! गुलाब को अखंड रहने नहीं दिए! तुम्हें प्रचार करने की जरूरत क्यों पड़ती है? दीया जलाओ ना! रोशनी अपनेआप बिना तनख्वाह लिये जायेगी। तुम फूल खिलाओ, खुश्बू की बिक्री नहीं करनी पड़ेगी, अपनेआप खुश्बू बहेगी। धर्म तो ये है। और युगों से धर्म के बारे में इतनी गेरसमझ हुई और इतनी दृढ हो गई ये गेरसमझें कि इससे समाज को बाहर निकालना मुश्किल है! कोई कोशिश करता है तो फिर सहन करना पड़ता है! क्योंकि नासमझों की संख्या ज्यादा है! और नासमझों को सपोर्ट करनेवालों तो फिर ओर ज्यादा है! अंधे अंधे को दोरे जा रहे हैं! कहां गिरेंगे खबर नहीं! और मेरी चिंता तो एक मात्र है कि नई युवानी जो आ रही है, अल्लाह करे वो भ्रमित न हो जाय।

आज मेरे पास एक चिठ्ठी है, 'मैंने 'मानस-गंगा' सुनी तब से रामकथा प्रीति हुई है और दिनोदिन बढ़ती ही जा रही है। बापू, आप भी और अन्य संत भी कहते हैं कि गुरु अवश्य बनाना चाहिए। मैंने भी गुरु बना दिया है। और उनके बताये अनुसार माला और जप आदि भी करती हूं। परंतु मेरी आस्था और प्रीति तो आपकी गाई रामकथा तथा वचनों में है। कहीं मुझे गलत नहीं हो रहा है? क्योंकि जहां मैंने गुरुपद कुबूल किया है वहां मेरा जी लगता ही नहीं!' गुरु करना ही चाहिए ऐसी मैं जबरदस्ती नहीं डालता हूं। मैं अपने लिए जरूर कहता हूं कि मुझे गुरु की जरूरत है। मैं तो कहता हूं किसीको न जरूरत हो तो अपनेआप भी जा सकते हैं। लेकिन जब आपको गुरु की जरूरत है तो जल्दी मत करो। किसी के प्रभाव में आ जाने के बाद आप जल्दी मंत्र ले लो! मुझे तो कभी-कभी लगता है कि मंत्र दे वो गुरु नहीं, तुम्हारा मंत्र कितने समय से किसी ने दिये है वो छिन ले वो गुरु! ला तेरा मंत्र! मैं यज्ञकुंड में डाल दूं। तो, आप अपने हाथों से अपनी हिंसा क्यों करते हो? आप की आत्मा कहीं है और आप कहीं क्यों फंसे जा रहे हो? मैं ये नहीं कहता कि मेरी कथा में लग जाओ। ये तो आप बता रहे हैं तो कह रहा हूं। बाकी मुझे कहां भीड इकठ्ठी करनी है? मुझे कहां कोई प्रचार करना है? फिर भी आपका जो गुरु है, जिन्होंने माला दी है, जप दिया है, जरूर आस्था रखो। लेकिन डामाडौल मत रहना। मैं तो यही ही कहूं, कथा सुनो। और मैं शुभकामना व्यक्त करता हूं कि कथा सुनने के बाद आपकी अपने गुरु में निष्ठा और बढ़े। मुझे तो चेला नहीं बनाना है। कल मेरा युवान मुझे जरा ढीला होकर कह रहा था कि इतनी कथा से कह रहे हैं कि -

ना कोई गुरु, ना कोई चेला।
अकेले में मेला, मेले में अकेला।

तो, जरा ढीला होकर कह रहा था कि तो हम क्या करे बापू? हम जाये कहां? मैंने कहा कि मैं कोई दीक्षा के रूप में मंडळ खड़ा नहीं करता हूं। लेकिन तेरे दिल में व्यासगादी के प्रति श्रद्धा है, ये श्रद्धा तुम्हें बांधने भी नहीं देती, तू मुक्त भी रहेगा और तू आनंद से जीएगा। यहां कोई गुरुपरंपरा थोड़ी है यार! कई लोग कहते हैं बापू, आपका आश्रम कहां है? आश्रम किसको है? आश्रम कहां? हमने 'आश्रम' शब्द ही नहीं लगवाया है। वो तो तलगाजरडा में कथा की थी तो कथा के स्थल का नाम 'चित्रकूटधाम' रख दिया था। तो उसी नाम लगा दिया।

तो, कौन सद्गुरु? कैसे पहचाने? दुनिया की परिस्थिति उसको डोलायमान करना चाहे लेकिन डिगे ना। न स्तुति उसको हिला दे, न निंदा उसको डिप्रेश करे। और जो बोले हैं वो भूले ना। यहां कोई भस्म लगाई हो, तिलक किया हो, बड़ी माला डाली हो, ऐसी कोई साधु की वेशभूषा की बात नहीं। केवल सीधे-सीधे लक्षण बता रहे हैं, स्वभावदर्शन करवा रहे हैं।

जप तप जोग क्रिया ते न्यारा,
सहज समाधि सिखावे, साधो...

न्यारा मानी डिस्टन्स रखता है। उपेक्षा नहीं करता है कि जोग खराब है, जप बेकार है, तप का कोई मूल्य नहीं, क्रिया का कोई अर्थ नहीं! लेकिन कहे, कलियुग है, तुम संसारी हो, इतना अंदर डूब मत जाना, जरा न्यारा रहना। चौबीस घंटों जप करो, ऐसा कोई गुरु नहीं कहेगा कि लगे रहो। सच्चा साधु वो है इससे न्यारा रहे। न्यारे रहो। जब हो, हो। हरि जब याद आये, आये। कई मेरे भाई-बहन पूछते हैं, हम क्रिष्न उपासक हैं, लेकिन खबर नहीं, कथा सुनते-सुनते शंकर इतने प्यारे लगते हैं कि क्रिष्न बोलने जाते हैं तो शिव आ जाता है! तो ये क्रिष्न ही तुमको दीक्षा दे रहे हैं कि तू शिव बोल। तुम अक्कड मत बनो।

समाधि के लिए तो ये अष्टांगयोगवाली बात है। समाधि का बहुत स्पष्ट वेदांत में जो अर्थ है, समाधि मानी समाधान। यम, नियम, आसन, प्राणायाम, प्रत्याहार, ध्यान, धारणा, समाधि ये जो पूरा क्रम है यात्रा का इसमें समाधि एक वो है, अवश्य। लेकिन हम जैसे संसारीओं के लिए तो समाधि मानी समाधान। कौन साधु? हां, कोई गुरु आपको समाधि में डूबो दे, बात ओर है। लेकिन जीवन का समाधान कर दे, जीवन का खुलासा कर दे, ये साधु। बहुत अच्छी अवस्था है समाधि। पहुंचे हुए महापुरुषों के बारे में बात ओर है।

समाधान दे वो समाधि। समाधि मानी सावधान। आपको कथा सुनते-सुनते कोई एक मुद्दा पर ऐसा समाधान हो जाये कि आपको लगे कि अब जीवनपर्यंत एक घटना मुझे कभी सता नहीं पायेगी, तो तुम्हारी ये समाधि लेकर जा रहे हो। तुम्हारी ग्रंथि छूट गई। वर्षा बहुत अच्छी है। फसल पकाती है। अमृत है। लेकिन वर्षा जब बर्फ गिराती है तो खेती का नाश करती है! तुलसीदासजी शब्दचयन करते हैं, 'मधुर मधुर गरजई घनघोरा।' वर्षा तो मधुर-मधुर होनी चाहिए। फिर 'घोरा' शब्द लगा दिया। वर्षा मधुर है, लेकिन वो ही वर्षा यदि जो ओला करे तो वो घोर बन जाती है। साधुता बहुत अच्छी वस्तु है, मधुर है, लेकिन प्रपंच और चमत्कारों में ये घोर बन जाती है और नुक्सान कर देती है।

काया कष्ट भूली नहीं देवे,
नहीं संसार छुडावै,
यह मन जाई जहां-जहां,
तहं तहं परम दिखावै।
साधो सो गुरु सत्य कहावै।

ऐसे महापुरुष की विचारधारा को संकीर्ण न बनाई जाय! ये तो आकाशी आदमी है। ऐसा सद्गुरु जो हमें शरीर को

कष्ट देने का कभी सिखाये ही ना कि तुम शरीर को तोड़ डालो! तुम इतने उपवास करो! तुम संथारा करो! कोई तप करे, जो धर्म की जो बातें, तपस्या हो इसको मेरा प्रणाम। लेकिन उपवास, शरीर को कष्ट, खिले पर सोना, कांटों पर चलना, उल्टे सिर रहना! ठीक है, जिसको जो राश आये वो करे, लेकिन कबीरसाहब जो गुरु पर प्रकाश डाल रहे है कि गुरु वो है जो कष्ट न दे शरीर का। शरीर परमात्मा का मंदिर है यार! तो काया को कष्ट न दे और इससे भी बहुत बड़ी बात कबीर कहते हैं, 'नहीं संसार छुडावै।' संन्यास लेना बहुत साहस है। मुझे एक प्रश्न पूछा गया कि 'संसार अघरो के संन्यास अघरो?' मारी दृष्टिए संसार जीववो अघरो अने संन्यास निभाववो अघरो। संन्यास की एक अद्‌भुत महिमा हमारे यहां आई। जिसको लग जाये, जिसका संसार छूट जाये वो ठीक है। संन्यास तो जगत की शोभा है। लेकिन सच्चा सद्‌गुरु ये है जो संसार छुडावे ना, संसार को समझाये।

यह मन जाई जहां-जहां
तहं तहं परम दिखावै, साधो...

कबीरसाहब ने मन के निरोध की बात नहीं की इस पद में कि मन का निरोध करो। कबीरसाहब कहते हैं, मन जहां-जहां जाय वहां परमपद दिखा दे। कितना सरल उपाय बताया! मन चंचल है। जहां रोकोगे, वहां और जायेगा। बालचेष्टा है मन की। लेकिन जहां-जहां मन जाये वहां परम पद देखे। जहां मन जायेगा हरि ही हरि है। हर जगह वो ही तो है। कितनी वास्तविक धरा पर साधुता का दर्शन कराया!

करम करे निष्कर्म रहे,
कछु ऐसी जुगुति बतावै,
सदा बिलास त्रास नहीं मन में।
भोग में जोग जगावै,
साधो सो गुरु सत्य कहावै...

कबीरसाहब का एक वाक्य है, 'कह कबीर कछु उद्यम कीजै।' करम करे लेकिन कर्म करने के बाद भी निष्कर्म रहे, ऐसी कोई युक्ति बता दे। कर्तापना का लोप कर दे। निमित्त बनकर कर्म करे। आप रिवोल्वर से किसी की हत्या कर दो। आदमी मर जायेगा। आप रंगे हाथ पकड़ जाये। आपको जैल हो जाये। रिवोल्वर को जैल नहीं होती। रिवोल्वर के कारण आदमी की डेथ हुई है, लेकिन रिवोल्वर निमित्त है, कर्ता कोई दूसरा है, पीछे है। कर्म करे ओर निष्कर्म रहे, ऐसी कोई युक्ति बता दे ऐसे साधु को सद्‌गुरु समझना। वो सदा विलास में रहता है, लेकिन विलास का त्रास नहीं। विलास उसको डराता नहीं। ये परमात्मा का विलास है। प्यारा शब्द है। गलत हाथों में गया विलास इसीलिए रजोगुणी हो गया, भोगपरक हो गया। कबीर का एक वचन है कि ऐसा विलास रखो कि जीवन पूरा नृत्य हो जाये। खाना-पीना यद्यपि विलास है, लेकिन उसको हम कम मानते हैं; नाच-गान उसको ज्यादा 'विलास' शब्द लगा देते हैं।

कबीरसाहब कहते हैं कि आदमी का प्रत्येक जीवन नृत्यमय होना चाहिए। कबीर से किसी ने पूछा कि आप जीवन को नृत्यमय करना चाहते हैं, मतलब? मतलब कि नर्तकी कोठे पर नृत्य करती है, वो उनकी जो मालकिन है उनके संकेत पर नाचती है। वो कहती है ये गाओ, ये गाओ। जैसी महफिल। तो वो मालकिन जैसा कहे वैसा वो नर्तकी नृत्य करती है। ये उनका कर्म है। नर्तन उनका कर्म है। लेकिन वो खुद नहीं कर रही है, किसी की आज्ञा पर कर रही है। कबीरसाहब इस संदर्भ में कहते हैं, परमात्मा तुम जो कर्म करवाये, इस कर्म को नृत्य की भांति करो। कबीर इस विलास को आदर देते हैं।

भीतर बाहर एक ही देखें,
दूजा दृष्टि न आवे
कह कबीर कोई सद्‌गुरु ऐसा,
आवागमन छुडावै, साधो...

आवागमन का यहां मेरी व्यासपीठ के दो अर्थ। आवागमन मिटा दे इसका तो बहुत प्रचलित धर्मजगत में अर्थ है, जनम-मरण का फंदा छुड़ा दे। एक अर्थ मुझे ये लगता है कि शायद कबीर ये भी कहना चाहते हैं कि ऐसा कोई गुरु मिल जाये तो तेरा इधर-उधर भटकना बंद हो जाय कि इनके पास जाये तो कोई दूसरा मंत्र ले लूं और मैं मालामाल हो जाउं! उसके पास जाऊं, कोई और क्रिया-कर्म जान लूं! ये सब कर लूं! तेरा भटकाव बंद हो जाय। फिर तुम्हें लगे कि बस मिल गया कोई बुद्धपुरुष। ये समाज समझा नहीं इसीलिए कृष्ण को बदनामी सहन करके कहना पड़ा, 'मामेकं शरणं व्रज।' 'अर्जुन, छोड़ सब, केवल मेरी शरण में आ जा।'

तो बाप, आपने पूछा इष्ट, गुरु, सद्‌गुरु पर प्रकाश डालना। कबीरसाहब ने मेरी दृष्टि में सद्‌गुरु पर इतना बड़ा प्रकाश डाला है। बहुत अद्‌भुत पद है मेरी दृष्टि में। कबीर ने बहुत कृपा की है, जगत को शुद्ध साधना का पथ दिखाया। हवे कोईने कांई पूछवुं छे? If you want any question? You can.

'बापू, प्रणाम। आपनी असीम कृपाथी क्यारेक मन शांत थाय छे, क्यारेक नथी थातुं. शरणागति क्यारे मळशे?' शरणागति में जाना हो उसे मन शांत हो या न हो उसकी चिंता छोड़ देनी चाहिए। ये अपने पर मत रखो। शरणागति मानी शरणागति। बात खतम! मेरा वक्तव्य है, शरणागति एक की ही होती है और अंतिम होती है। शरणागति होने के बाद मन की शांति-अशांति भूल जाओ। अथवा तो जो है, जिसके हम शरणागत है उनके चरणों को याद करके वहां रख दो, तू जाने! और कुछ? 'बापू, तमे हमणां क्लिअर कर्युं ने के गुरु करवा फरजियात नथी। तमे गुरुमां मानो छो। सांभळ्युं छे के जो तमे गुरु नहीं करो तो अंतिम समये तमने मोक्ष नहीं मळे, सद्‌गति नहीं मळे, नरकमां जवुं पडशे! अने बीजुं, गुरु कर्या पछी अत्यारना गुरुने अयोग्य वर्तन कर्या पछी एने

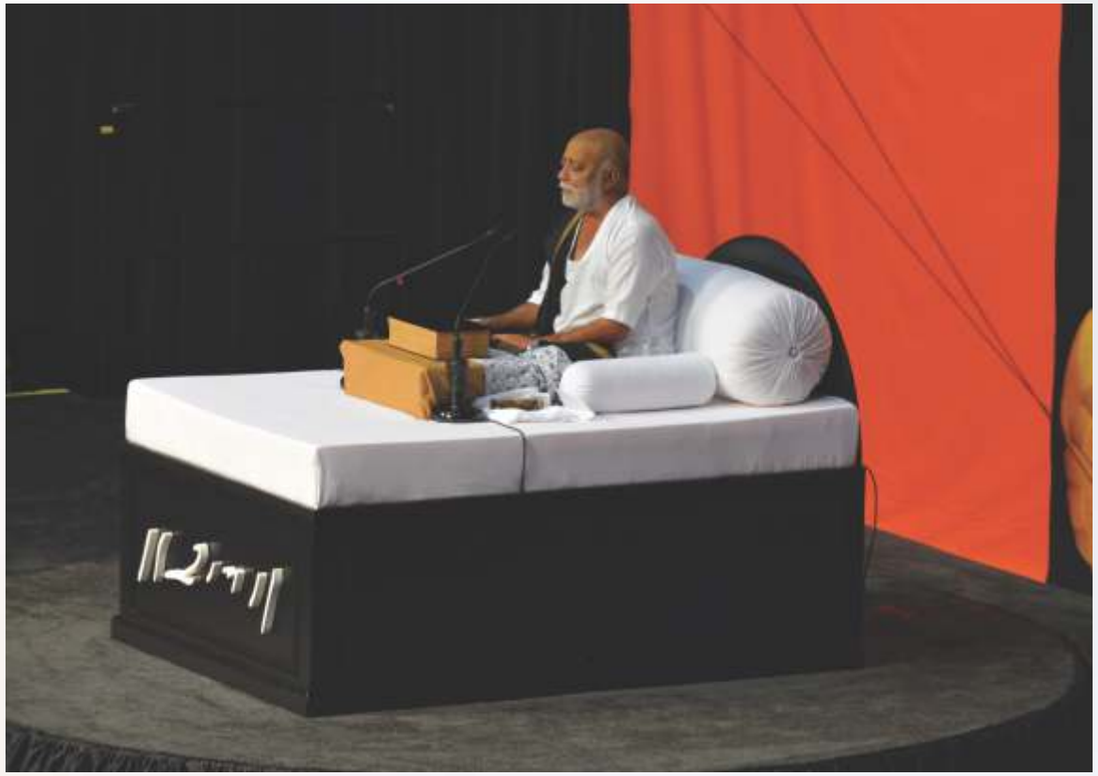

जेलमां जवुं पडे छे! तो ए आपणने स्वर्गमां क्यांथी लई जाय? तो आपणे गुरु करवा ज होय तो कोने करवा?' हवे, 'गुरु नहीं करो तो मोक्ष नहीं मळे', एनो जवाब सांभळो के एवुं कहे एने कहेवानुं के मारे मोक्ष नथी जोईतो। राख तारी पासे! बराबर? शंकराचार्यए एवुं कीधुं छे, 'न मोक्षस्याकांक्षा...' भरते कह्युं छे, मारे मोक्ष नथी जोतो।

गुरु मार्गदर्शक है, जरूरी है। मैं गुरु की प्रवाही परंपरा में हूं। लेकिन मैं दबाव नहीं डालता कि तुम्हें गुरु करना ही चाहिए। मैं आपकी पीड़ा समझता हूं कि कुछ लोग कहेते हैं कि गुरु बनाना ही पड़े! और वो तो ठीक है, 'गुरु बनाना ही पडे', ऐसा कहे। लेकिन 'गुरु, हमें ही बनाओ! कबीर को बनाओ तो नहीं; मरोगे! ठाकुर को बनाओगे तो नहीं; गये! हमको ही बनाओ!' भैया, ये सब व्यापार है! इससे बाहर रहो।

तो बाप, कुछ बातें करके आगे बढ़ जाऊं। जिस शास्त्र को लेकर मैं बैठा हूं इस शास्त्र में सात दर्शन है। ये सात दर्शन को जो देखे वो पुन्यपुंज है। एक तो रामदर्शन है। इसमें राम की कथा है तो आदि-मध्य-अवसान तीनों जगह राम प्रतिपादित है। और 'रामचरित मानस' में रामदर्शन है तो सीता अंदर आ ही जाती है। मुझे कहने दो, भरतजी भी आ जाते हैं उसमें। शत्रुघ्न भी आ जाते हैं। लक्ष्मणजी आ जाते हैं। सब परिवारजन आ जाते हैं। राम में सब आ जाते हैं। ठीक है? तो एक है रामदर्शन। दूसरा है शिवदर्शन। शिव की चर्चा तुलसी ने की है। तीसरा दर्शन है धर्मदर्शन। महाराज जनक की धार्मिकता। महाराज दशरथजी की धार्मिकता। बहुत बड़ा धर्मदर्शन 'रामचरित मानस' में है। चौथा दर्शन है अर्थदर्शन। रावण की समृद्धि का जो वर्णन आता है 'मानस' में ये मैं मेरी जिम्मेवारी से कहना चाहूंगा ये 'मानस' का अर्थदर्शन है। 'रामचरित मानस' में पांचवां दर्शन है कामदर्शन। अद्‌भुत कामदर्शन है! जिसके बारे में तीन कथा हुई। और 'मानस-कामदर्शन' में खजूराहो में मैंने कहा था कि काम रस है। ध्यान देना, नाक मत सिकुडना; दंभ मत करना। लेकिन साथ-साथ ये भी मत भूलना राम 'महारस' है। जो 'रसो वै सः' है। मोक्षदर्शन है 'रामचरित मानस' में। यद्यपि संक्षेप में है, लेकिन मोक्षदर्शन है। सातवां दर्शन है 'रामचरित मानस' में विश्वदर्शन। परमात्मा का विश्वदर्शन। ये सात दर्शन जिन्होंने देखे हैं, जो देख रहे हैं, जो देखेंगे वो पुन्यपुंज है।

ते पुनि पुन्यपुंज हम लेखे ।
जे देखहिं देखिहहिं जिन्ह देखे ।।

वनमारग की ये पंक्ति है। भगवान राम-लखन-जानकी निकलते हैं। और लोग जो प्रभु का दर्शन करने के लिए उमड़ते हैं वहां तुलसी कहते हैं इस राम को जिन्होंने देखा है, जो देख रहे हैं और जो देखेंगे वो सब पुन्यपुंज है। और यहां भगवान का दर्शन मानी सप्तदर्शन-रामदर्शन, शिवदर्शन, धर्मदर्शन, अर्थदर्शन, कामदर्शन, मोक्षदर्शन, विश्वदर्शन। ये सातों दर्शन। इसमें से किसी की अवहेलना मत करना; वर्ना पुन्यपुंज नहीं कहलायेंगे।

तो, 'मानस' में जहां 'पुन्यपुंज' शब्द है वहां कुछ-कुछ विशिष्ट दर्शन है। कथा सुनते-सुनते जिन्होंने शिवदर्शन देखा और सही रूप में शिव को समझा ये पुन्य है। रामदर्शन देखा, सही में समझा तो पुन्य है। कामदर्शन सुना और सही में सुना और देखा तो पुन्य है। प्रत्येक दर्शन पुन्य है। हम राम की मूर्ति देखते हैं, रामदर्शन कहां करते हैं? मुझे कहने दो, रामकथा यद्यपि ऐतिहासिक है। लेकिन घटना तो त्रेताकाल की है। तो फिर आज उसकी प्रासंगिकता क्या है? प्रासंगिकता इसीलिए है कि ये घटी घटना है। बिलकुल ऐतिहासिक सत्य है रामकथा। त्रेता का सत्य है, लेकिन प्रत्येक व्यक्ति के लिए, प्रत्येक देश के लिए, समुचे विश्व के लिए ये शाश्वत सत्य भी है। प्रकाश का दर्शन सीधा करो तो एक ही रंग दिखता है। लेकिन कोई काच द्वारा प्रकाश को पसार करो। कितने रंग दिखते हैं! 'रामचरित मानस' में तो राम ही है। लेकिन कोई बुद्धपुरुष के आश्रय में रामकथा देखने में आये तो सप्तरंग दिखेंगे। इन दर्शनों को जो देख रहे हैं, जिसने देखा है, जो देखेंगे, गोस्वामीजी इनको पुन्यपुंज कहते हैं। किसी के घर में अंधेरा हो और आप दीप जला दो, पुन्य है। लेकिन किसी के घर में अंधेरा है और वहां कोई एकाद सूत्र का दीप जला दो तो ये आध्यात्मिक पुन्य है।

शिव और पार्वती का विवाह हुआ। कार्तिकेय का जनम हुआ। तारकासुर का निर्वाण हुआ। भगवान शंकर कैलास पर बैठे हैं। पार्वती ने प्रश्न पूछा। और इस प्रश्न के जवाब में महादेव रामकथा सुनाने लगे कि हे देवी, राम का जनम कब होता है, सुनो। इनमें पांच कारण, जय-विजय, सती वृंदा, नारद, मनु, प्रतापभानु, ये सभी के कारण परमात्मा को धरती पर अयोध्या में रामअवतार लेना पड़ा है। रावण-कुंभकर्ण-विभीषण ने कड़ी तपस्या की। बड़े दुर्लभ वरदान प्राप्त किए। रावण ने

> आप कल्पना कीजिए, धर्म को हमने क्या कर दिया! हमने गुलाब की पंखुडियां तोड डाली! गुलाब को गुलाब ही रहने दे। मैंने एक पंखुड़ी तोड़ दी और इस पंखुड़ी को कह दिया, ये मेरा धर्म! एक दूसरा खिंचकर गया, इसने कहा ये मेरा धर्म! गुलाब को अखंड रहने नहीं दिए! तुम्हें प्रचार करने की जरूरत क्यों पड़ती है? तुम फूल खिलाओ, खुश्बू की बिक्री नहीं करनी पड़ेगी, अपनेआप खुश्बू बहेगी। धर्म तो ये है। और युगों से धर्म के बारे में इतनी गेरसमझ हुई और इतनी दृढ हो गई ये गेरसमझें कि इससे समाज को बाहर निकालना मुश्किल है! कोई कोशिश करता है तो फिर सहन करना पड़ता है! क्योंकि नासमझों की संख्या ज्यादा है!

समाज पर बहुत त्रास गुजारा और पूरी पृथ्वी गाय का रूप लेकर भगवान से प्रार्थना करने जाती है। ऋषि-मुनि, देवगण सब साथ में हुए और ब्रह्मा के पास जाकर पूरे अस्तित्व ने समूह प्रार्थना की कि प्रभु, इस मुश्किल पलों से हमें बचाये। आकाशवाणी हुई, 'डरो मत। मैं प्रकट होउंगा।' भगवान के अवतार की भूमिका बन गई।

रघुवंश का शासन। वर्तमान राजाधिराज महाराज दशरथजी और उनकी प्रिय रानियां। प्रसन्न जीवन है। बार-बार व्यासपीठ से आपने सुना है कि दशरथजी अपनी रानियों को प्यार देते हैं और रानियां दशरथ को आदर देते हैं। मैं बार-बार इस बात को दोहराता रहता हूं, आवश्यक भी लगता है इसीलिए कि मेरे भाई-बहन, जीवन में राम जैसा पुत्र चाहिए तो दांपत्य ऐसा बने। पुरुष अपनी स्त्री को प्यार दे और स्त्री अपने पुरुष को आदर दे और फिर दोनों मिलकर भगवद्‌भजन करे। ऐसे जीवन में राम प्रकट हो सकते हैं। अथवा तो विश्राम, आराम, शांति हमें मिल सकती है।

दशरथजी गुरुदेव के पास जाते हैं। पुत्रकामेष्टि यज्ञ होता है। यज्ञकुंड में से यज्ञपुरुष प्रकट होते हैं। यज्ञदेव ने वशिष्ठजी को प्रसाद दिया। गुरुदेव ने प्रसाद दशरथजी को दिया और तीनों रानियों को प्रसाद बांटा गया। फिर प्रभुप्राकट्य का अवसर आया। त्रेतायुग, शुक्लपक्ष, नौवी तिथि, विश्राम का समय। परमात्मा कौशल्या के भवन में प्रकट हुए हैं। प्रकाश फैलने लगा। चतुर्भुज विग्रह दिखने लगा। संतो से सुना है कि कौशल्याजी ने मुंह फेर लिया। कहती है, 'प्रभु, आप वचन चुक गए हैं। आप नररूप में नहीं, नारायणरूप में हैं।' फिर भगवान मनुष्यरूप में दिखते हैं। भगवान नवजात शिशु बनकर कौशल्या की गोद में रोने लगे। बच्चे का रुदन सुनकर दूसरी रानियां सभ्रम दौड़ी आई। दशरथजी को बधाई दी गई। ब्रह्मानंद हुआ। गुरु वशिष्ठजी को बुलाये गये। महाराज को परमानंद हुआ। समग्र अयोध्या बधाई में डूब गई। आप सभी को भी रामजन्म की बधाई हो।

मानस-पुन्यपुंज

॥ ७ ॥

चित्रकूट पुन्यपुंज है, महिमावंत है

'मानस-पुन्यपुंज', जिसकी संवादी चर्चा चल रही है उसमें कुछ आगे बढ़ें। पुन्यपुंज की इस श्रेणी में कुछ ओर बातें सोचे। हमारे यहां कुछ वस्तुओं को भी पुन्य माना गया है। उसमें कुछ करना नहीं है। इन वस्तुओं के साथ कुछ अच्छा उपयोग हो तो विशेष अच्छा है लेकिन कुछ बातें ऐसी है जो होना मात्र पुन्य है। ख़ास करके हमारे स्मृति ग्रंथों में बिलग-बिलग जगह से ऐसी पुन्यमयी बातों का संकेत है। हमारे यहां कहा गया कि जिसके आंगन में गाय हो वो पुन्य है। अपने घर में, अपने आंगन में गाय का होना उसको हमारी प्रवाही और प्रेक्टिकल परंपरा ने पुन्य माना है। 'गायो पुन्याः' ऐसा पाठ है। अब इसका ज्यादा वर्णन करने की जरूरत नहीं। गाय इसीलिए पुन्य मानी गई हो कि सात्त्विक है। और कई प्रकार के दूधों से उसका दूध जीवन और साधना-जीवन दोनों के लिए ज्यादा उपयुक्त है। गाय का दूध बहुत पाचक भी माना जाता है। लेकिन भारतीयों ने गाय को पूजा है, प्रेम किया है। उसका कारण मूल में ये है कि आप ने सुना होगा कि गाय के शरीर में सभी देवताओं को जब स्थान देने की बात आई तो सभी देवता दौड़ आये गाय के शरीर में स्थान प्राप्त करने के लिए। सब आ गये लेकिन लक्ष्मीजी देर से आई। तो गाय से विनंती करती है कि मैं देर से आई; मुझे भी आप के शरीर में जगह दो। तो कथा ऐसी होती है कि गाय के गोबर में जगह थी तो लक्ष्मीजी ने कहा, मैं आप की गोबर में बसूंगी। तब से कहा जाता है कि गाय के गोबर में लक्ष्मीजी का निवास है।

ये दृष्टांत है कि हकीकत है, जो हो, उसमें हम न जाये। लेकिन एक बस्तु तो पक्की है कि गाय की गोबर में लक्ष्मी है। गाय का गोबर खात बनता है। अच्छी खात से अच्छी फ़सल पकती है। गाय के गोबर में गेस है, उससे अग्नि और चूल्हा जलता है। गौमूत्र पर भी कितने प्रयोग हो रहे हैं जो हमारे पंचगव्य माने गये भारत में। इन सब सभी का उपयोग है। तो उसका ज्यादा विश्लेषण न करते हुए मेरे युवान भाई-बहनों को मैं जरा संकेत करता चलूं कि कुछ पुन्य हमारे घर में ओलरेडी है। वहां कुछ करना नहीं है। ये गाय का होना पुन्य है। अमरिका में तो मुश्किल है, मैं समझता हूं। लेकिन देश में आप का घर हो, आप का गांव हो और आप भले अमरिका में रहे लेकिन वहां भी एक-दो गाय आप रख

सकते हैं, उसका पालन होता हो तो अच्छा है। ये पुन्य है। न रखो तो पाप नहीं है, ध्यान देना। पाप में तो जाना ही नहीं! पोझिटिव सोचो। अथवा तो आप गाय के दूध का ही उपयोग करो, गाय के घी का ही उपयोग करो तो भी पुन्य है। तो गाय पुन्य माना गया है।

तो, गाय एक तो पुन्य है। यदि धर्म के साथ हिन्दु जोड़ दो चलो, गांधीजी भी कहते थे कि हिन्दु होने का मुझे गर्व है। विवेकानंदजी भी कहते थे। ये अपनी आईडेन्टीटी है। मैं आप से इतना जरूर कहूं कि 'हम हिन्दु है', ऐसा वो करके कोई संघर्ष पैदा न करे लेकिन 'हम हिन्दु है', ऐसा बेधडक कहने में गौरव जरूर लेना। झूठी सांप्रदायित्ता और दांभिक बिनसांप्रदायित्ता का नाटक मत करना। हिन्दु है, है। हिन्दु घरों में हम पैदा हुए हैं। हम सहिष्णु है। हम संवेदनशील है। हम उदार है। इस्लाम के धर्म के अग्रणी लोगों ने कहा है कि यदि हमें यहां से भागने की छूट मिले और हमें कहा जाय कि कहां आश्रय लेना है? तो हम हिन्दुस्तान का आश्रय मांगेगे। ऐसी हिन्दुस्तान की आबरु है। हिन्दुत्व संकीर्ण न बन जाये लेकिन हिन्दु कहलाने में भी कोई ये संकोच नहीं करना चाहिए।

तो गाय पुन्य है मेरे भाई-बहन। दूसरा, आप के आंगन में आप तुलसी का पौधा रखो, स्मृतिकारों का कहना है ये पुन्य है। आंगन में तुलसी रखो, बिल्वपत्र रखो। और तुलसी तो प्रतिनिधित्व है वनस्पति जगत का। आज तो तुलसी की कितनी औषधियां, तुलसी का रस, तुलसी बहुत उपयोगी है। मेरा कोई अभ्यास नहीं इसीलिए मैं अनधिकार उसके बारे में कुछ न कह सकूं। लेकिन तुलसी के पत्तें खाने से और पुन्य मिले न मिले, छोड़ो, प्रसन्नता मिलती है। कई प्रकार के रोग का नाशक है तुलसीपत्ते, उसके मांजर। एक बार मुझे नगीनबापा भी कहते थे कि तुलसी के पत्तें खाने से फायदा हुआ। मैं भी तुलसी को जल चढ़ाने के बाद थोड़े ताज़े-ताज़े तुलसी के पत्तें, तुलसी का पौधा डिस्टर्ब न हो इस तरह पत्तें तोड़कर खाता हूं तो मुझे अच्छा लगता है। वैसे भी तुलसी मुझे पहले से अच्छे लगते हैं। तो तुलसी को खाया भी है, तुलसी को पीया भी है। और तुलसी को गाया भी है। गाता तो रहता ही हूं, केन्द्र में तो तुलसी है।

मेरा एक मित्र, मित्र तो नहीं; हम साथ में पढ़े हैं। मेरा कोई मित्र ही नहीं रहा है इसीलिए कोई दुश्मन भी नहीं है। तो सलमान राजाणी हम साथ में पढ़े मैट्रिक तक। मिलते रहते हैं महुवा में। उसकी तो बड़ी पीढ़ी है। तो एक बार कहे, 'बापू, मेरे घर आओ ना।' तो मैं फ़िर एक दिन गया। फ़िर मुझे कहे, मेरा घर देखोगे? मैंने कहा, जरूर। सब देखा। बोले, अटारी में आओगे? तो मैं अटारी में गया। तो वहां तीन तुलसी के गमले लगे हुए थे। मुस्लिम है। तो पहले तो मुझे आश्चर्य-आनंद हुआ कि मुस्लिम और तुलसी रखते हैं? तो मुझे कहे, 'बापू, आप को आश्चर्य हुआ?' मैंने कहा, आश्चर्य तो हुआ ही लेकिन आनंद बहुत हुआ कि आप तुलसी रखते हैं। बोले, 'रखते ही है ऐसा नहीं बापू, हमारे बच्चे रोज स्कूल जाते हैं तो तुलसी को जल चढ़ाकर जाते हैं।' तो तुलसी का रखना पुन्य है।

आप के घर में आप कोई सद्ग्रंथ रखे ये पुन्य है। 'महाभारत', 'रामायण', 'भगवद्गीता', 'धम्मपद', 'आगम', 'ताओ', 'श्रीमद्भागवत', 'शिवपुराण', पवित्र 'कुर्आन', 'बाईबल', जो आप का धर्म हो। अरे, मैं तो सद्ग्रंथ को ये कहता हूं कि जिसमें कुछ ऐसा सद् पड़ा हो वो हमारे अंदर रहे सद् को विकसित करे। जो हमारे सत्य को विकसित करे ऐसा कोई ग्रंथ। एक नवलकथा हो तो भी मुझे कोई आपत्ति नहीं है। एक कविता का ग्रंथ हो तो कोई मुझे आपत्ति नहीं है। 'रामचरित मानस' की महिमा यद्यपि कही न जाय, वेद की महिमा यद्यपि कही न जाय। लेकिन साहित्य का कोई भी ग्रंथ हो। गूर्जियेफ ने तो एक बार ऐसा कह दिया, मुझे बहुत अच्छा लगा कि धर्म से छूटकारा प्राप्त करना है तो धर्मगुरुओं के पास रहना शुरू करो। और दूसरी बात इससे भी ज्यादा अच्छी कही युवान भाई-बहन, कि यदि धर्म से छूटकारा प्राप्त न करना हो तो धर्मगुरु के पास नहीं, कोई सद्ग्रंथ के पास जरूर रहना। कोई अच्छा ग्रंथ, कोई

नाट्यग्रंथ, कोई संगीत ग्रंथ, ये पुन्य है। मैं आप के सामने पुन्य की बातें कर रहा हूं तो लगता है कि हम आज तक बहुत छोटी-छोटी बातों में पुन्य समझकर एक तसल्ली लिए घूम रहे हैं कि ये कर लिया, पुन्य हो गया! ये कर लिया, पुन्य हो गया! ये अच्छा है, करो। न करो ऐसा नहीं। घर में कोई सद्ग्रंथ अथवा कोई इष्ट ग्रंथ हो घर में ये पुन्य है। कल या दो दिन पहले छोटी-सी लड़की मेरे से जो 'रामचरित मानस' में साईन कराने आई वो गुजराती में 'रामचरित मानस' था। मैंने कहा, तू ये गुजराती पढ़ोगे क्या? बोली, हां, मैं पढ़ूंगी। तो एक तो 'रामायण' पढ़ेगी, फ़िर गुजराती में पढ़ेगी। ये पुन्य है कि अपनी भाषा भी तो संभल जायेगी। यद्यपि भाषा तो साधन है, माध्यम है। परमात्मा की कोई भाषा नहीं है। भाषा तो व्यवहार है। बदलती रहती है।

चौथा पुन्य, यदि आप गुरु परंपरा में निष्ठा रखते हैं, आप शरणागत हैं तो गुरु की, अपने बुद्धपुरुष की कोई भी यूझ की हुई चीज़ आप के घर में हो वो पुन्य है। अथवा तो पादुका। आप उसकी गेरसमझ न करे कि इसमें आप बंध जाये और इसमें फ़िर एक व्यक्तिपूजा शुरू हो जाय! मैंने कल ये भी कह दिया कि एक समय ऐसा आये, आप मेरी तस्वीरें भी निकाल दो क्योंकि ये बाधा होगी तुम्हारी। तुम्हारी हरिप्राप्ति में ये बाधा होगी। इसको भी छोड़ो। लेकिन जिसको इस परमतत्त्व तक पहुंचना ही नहीं, जिसको पादुका में ही परम का दर्शन हो गया, उनके लिए पादुका पुन्य है। कई लोग ऐसा भी मानते हैं कि हमें हरि तक नहीं जाना है। खुमार बाराबंकवीसाहब का शे'र है -

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।

यदि मंज़िल निकट आ गई तो फ़िर कोई आनंद नहीं रहेगा यात्रा का। मुझे मंज़िल नहीं चाहिए, मुझे मार्गदर्शक चाहिए, ये भी एक पक्ष है। करीब-करीब सूफ़ीवादों में हम देखते हैं तो लगता है कि अल्लाह तो सर्व को मिला हुआ है, हमें मुर्शिद चाहिए। सवाल है भाव का। इसी भावनावालें लोगों के लिए पादुका भी पुन्य है। मुझे डो.साहब ने कल ईसाई दो व्यक्ति को मिलवाया जिसने मेरे यज्ञकुंड के लिए वो बनाया एक जैसा और उसने ये दो दिन में सेवा की। अब मुझे तो पता नहीं! और उसने डोक्टर को कहा कि ये आदमी ने हम को कोन्ट्राक्ट दिया तो ये दो-तीन दिन पहले ऐसा कह रहा था कि मुझे मोरारिबापू का सपना आया और वो सपने में कह रहे थे कि सीधा-सादा बनाना। अब ये विज्ञान है! मेरी समझ में नहीं आ रहा है! उसने न तो मोरारिबापू को देखा है और यज्ञ के बारे में वो क्या जाने? तो मेरा आश्चर्य ये है कि ये आदमी ईसाई है, लेकिन उसने कहा कि बापू का सपना आया! और मुझे अच्छा ये लगा कि सपने में बापू ने कहा कि सब कुछ सादा-सादा बनाना। लक्झूरियस मत बनाना। सपना आया, न आया, अल्लाह जाने! मेरा स्वभाव तो उसमें आया! तो, अध्यात्म एक मिस्ट्री है। अध्यात्म एक बहुत गहन रहस्य है। पता नहीं चलता, कोंपलें कहां निकले? तो बुद्धपुरुष की कोई भी चीज़ अपने पास श्रद्धा से रखने से अपने घर में ये पुन्य माना गया है। पादुका बहुत अद्भुत वस्तु है, लेकिन जिस माला पर किसी बुद्धपुरुष ने भजन किया हो ये माला यदि आप को मिल जाये तो उसके समान श्रेष्ठ पुन्य कोई नहीं है। चोरी मत कर लेना!

झडपेलुं अमी अमर करशे,
अभय नहीं आपी शकशे।

छिना हुआ अमृत आप को अमर तो बना दे लेकिन निर्भय नहीं बना सकता। सद्गुरु की कोई भी वस्तु पुन्य है, याद रखना। आज कल्पना कर लो, पचीस सौ साल पहले भगवान बुद्ध जो भिक्षापात्र रखते थे वो भिक्षापात्र आज किसीके पास हो ये आदमी के सामने चौदह ब्रह्मांड गरीब लगने लगते हैं साहब! हमारे विष्णुदेवानंदगिरिदादा जो महामंडलेश्वर रहे तो उसने हम को जो कमंडल दिया, जो संन्यासी कमंडल रखते थे वो और एक पश्मीना साल किसी पंजाबी माताजी ने दी होगी वो पश्मीना साल हम को दी है। हमारे पास ये है। हमारे लिए ये पुन्य का ढ़ेर है साहब! ये स्वाभाविक है। उनकी एक महिमा है। तो कुछ

वस्तु ऐसी है जो पुन्य है। क्योंकि बुद्धपुरुषों की सेवित वस्तुएं चेतनामय होती है। कोई मेहमान अपने घर आये, कोई संत आये और पांच-सात दिन रह जाये तो सा'ब घर के अणु-परमाणु बदल जाते हैं! उसका रूप बदल जाता है। तो ये सब चीज़ें भी पुन्य है।

आगे बढ़ें। किसी महापुरुष को आप सुनने गये हैं और उनके मुख से कोई ऐसा मंत्र या सूत्र आ गया, और आंतरिक जीवन के लिए ये सूत्र आप को सटिक और प्रासंगिक लगा और कोई भी सूत्र आपने निर्णित कर लिया तो ये पुन्य है। यद्यपि मैं बार-बार स्पष्टता करता हूं कि ये सत्य, प्रेम, करुणा ये कोई मोरारिबापू की खोज़ नहीं है। ये तो वैदिक परंपरा के सूत्र है। विनोबाजी ने बिलग रूप में उसको पेश किया है। मेरे अनुभव में 'रामायण' के निचौड़ के रूप में मैंने कुबूल किया है। लेकिन कई लोगों को मैं देखता हूं, सत्य, प्रेम, करुणा उनके लिए पुन्य बन गया है।

तो, ये है पुन्य। तुम करो न करो, जरूरी नहीं है, प्लीज़! और मेरे कहने के कारण करना भी नहीं। ये तुम्हारा स्वभाव बने तो। लेकिन सुबह-सुबह स्नान करके तुम अपने भाल में थोड़ा तिलक करो वो पुन्य है। ये माताएं चांदला करती है ये सौभाग्य पुन्य है। मैं आप को ये नहीं कह रहा हूं कि आप शुरू कर दे कल से हां! लेकिन तिलक के भाव को रखना पुन्य है। आप के घर में गंगाजल या यमुनाजल है, आप के घर में पुन्य निवास कर रहा है। ये बहुत हम कर सके ऐसी बातें हैं। गंगाजल, यमुनाजल अरे, कोई भी पवित्र नदी का जल। क्या फ़र्क पड़ता है? ये पुन्य है। घर में दहीं का होना स्मृतिकारों ने कहा पुन्य है। सगुन माना जाता है दहीं। हमारे यहां पंचामृत को भी पुन्य कहा है। तो पुन्य की जब चर्चा चल रही है तब बहुत विशाल फलक पर हम पुन्य की महिमा कर सकते हैं। बहुत सीधी-सादी बात है। लेकिन बहुत सरल बात होती है न उस पर हम ध्यान नहीं देते हैं। लेकिन सरल ही बहुत महिमावंत होती है। आचार्य तो कहते हैं कि तुम्हारे घर बगल से, पडोश से चार पैर चलता हुआ कोई बच्चा ऐसे ही चलता-चलता तुम्हारे आंगन में आकर खेलने लगे तो समझना तुम्हारे घर में पुन्य आया है। और ये मैं इसीलिए कह रहा हूं कि इसी दृष्टि से यदि जीवन को देखा जाय तो जीवन बड़ा प्रसन्न रह सकता है। एक बच्चे का आंगन में खेलना पुन्य है। गंगास्वरूप कोई विधवा माताजी बैठी है हाथ में माला लिए और उसके सामने आप आंख झुकाकर प्रणाम करे और पूछे, 'माँ, कोई सेवा करूं?' ये पुन्य है।

तो, नये-नये पुन्य खोज़ने पड़ेंगे। इक्कीसवीं सदी के लिए पुन्य अर्जित करने पड़ेंगे। तो, पुन्य के बारे में ये जो कुछ चर्चायें चल रही है उसमें कुछ 'मानस' के आधार पर भी आगे बढ़े। एक ओर 'पुन्यपुंज' शब्द 'मानस' से उठाया जाये।

चित्रकूट के बिहग मृग बेलि बिटप तृन जाति।
पुन्य पुंज सब धन्य अस कहहिं देव दिन राति।।

गोस्वामीजी ने इतने को पुन्यपुंज कह दिया है। चित्रकूट में भगवान निवास कर रहे हैं और चित्रकूट में जो पक्षी है ये सब पुन्यपुंज है। मृग-पशु जो चित्रकूट में निवास करते हैं ये सब पुन्यपुंज है। वेली-लता-पता पुन्यपुंज है। चित्रकूट के वृक्ष, पेड़ पुन्यपुंज है। तृण, विध-विध प्रकार के घास आदि उसको तुलसी ने पुन्यपुंज कहा है। रात-दिन ये देवताओं चित्रकूट की इतनी वस्तुओं को पुन्यपुंज कहकर सराहते हैं। चित्रकूट स्वयं पुन्यपुंज है। चित्रकूट स्वयं महिमावंत है। उनके अगल-बगल का परिसर पुन्यमय है। ये सब ठीक, लेकिन यहां जो ख़ास संकेत किये हैं कि इतनी चीज़ें पुन्यपुंज है। अवश्य। लेकिन यहां चित्रकूट के अगल-बगल के परिसरों को लक्षित करके उसको पुन्यपुंज की संज्ञा दी है इसीलिए उसके कुछ विशेष अर्थ की ओर हमें जाना चाहिए।

पहला शब्द तो है, 'चित्रकूट।' चित्रकूट स्वयं पवित्र है, महान है। अपने आप में अद्भुत है। गोस्वामीजी ने चित्रकूट की महिमा गाते हुए बहुत गाया है।

चित्रकूट अति बिचित्र, सुंदरबन, महि पबित्र।
पावनिपय-सरित, सकल मल-निकंदिनी।।

तो बाप, चित्रकूट स्थूल रूप में तो पुन्यमय है ही। लेकिन तुलसीदासजी ने चित्रकूट की एक आध्यात्मिक परिभाषा की है कि चित्रकूट मानी क्या? भगवान चित्रकूट क्यों करीब-करीब तेरह साल निवास करते हैं? और 'चित्रकूट रघुनंदन छाए।' भगवान छा गये। कणकण में, रजरज में प्रभु समा गये। इतना चित्रकूट रघुवीर को प्रिय है। आपको पता है, व्रजवासी आज भी कहते हैं कि वृंदावन को छोड़कर एक कदम भी कृष्ण यहां से कहीं गये ही नहीं है। ये वृंदावनवासीओं की अखंड और शाश्वती श्रद्धा है कि हमारा कृष्ण कहीं गये ही नहीं। वैसे रामउपासकों की भी एक निष्ठा है कि भगवान राम चित्रकूट छोड़कर एक कदम भी आगे नहीं गये हैं। ये श्रद्धाजगत की बात है।

आज भी ऐसा माना जाता है कि चित्रकूट में सीतारामजी का अखंड निवास है। चित्रकूट में ऐसी भी मान्यता है। ये श्रद्धा की बात है। मेरी बात सुनकर चित्रकूट चले मत जाना, लेकिन आज भी एक मान्यता है कि चित्रकूट में छ महिना केवल दूध और फल लेकर मंदाकिनी के तट पर बैठकर कोई साधक सीतारामजी का भजन करे तो उसको सीतारामजी के प्रत्यक्ष दर्शन होते हैं। ऐसी श्रद्धाजगत की धारणा है।

तो, चित्रकूट अपनेआप में महान है। अयोध्या ने तो राम को निकाला! चित्रकूट ने राम को संभाला। इसीलिए ब्रह्मलीन पंडित रामकिंकरजी महाराज तो ऐसा ही मानते रहे और वो बिलकुल अच्छा भाव उसका रहा, मैं सहमत हूं, वो कहते हैं कि रामराज्य की स्थापना अयोध्या में हुई ही नहीं, शृंगबेरपुर में हुई थी और विस्तार चित्रकूट में हुआ था। तो चित्रकूट के गोस्वामीजी ने एक आध्यात्मिक रूप देते हुए लिखा है, आप जानते हैं -

रामकथा मंदाकिनी चित्रकूट चित चारु।
तुलसी सुभग सनेह बन रघुबीर बिहारु।।

तुलसी कहते हैं, रामकथा मंदाकिनी है। भगवान की कथा ये मंदाकिनी नदी है जो चित्रकूट में बहती है। और चित्रकूट विक्षेपमुक्त सुंदर चित्त है। गोस्वामीजी कहते हैं, स्नेह यही तो चित्रकूट के अगल-बगल का बन है और जिनमें सीता और रघुवीर निरंतर विहार कर रहे हैं। तो, चित्रकूट का जो आध्यात्मिक अर्थ है ये चित्त है मानवी का।

अंत:करण उपादान है। वो संकल्प-विकल्प करे तब वो मन बन जाता है। वो निर्णय करे तब वो बुद्धि बन जाता है। वो एक जगह स्थिर हो जाये तब चित्त बन जाता है। और अंत:करण अहंकार करे कि मेरे जैसा कौन? मैं कौन? ये सब होने लगे तब यदि अंत:करण अहंकार का रूप लेता है। तुलसीदासजी ने कहा कि ये चित्त है वो चित्रकूट है। और चारु है, विक्षेपवाला नहीं। मुझे इतना ही कहना है, हमारा अंत:करण संकल्प-विकल्प न करे। निर्णय की बात भी शरणागत छोड़ दे कि जो मालिक को करना है करे। अहंकार का तो सवाल नहीं नहीं। शरणागतों को तो क्या अहंकार? किस बात का अहंकार? हमारा चित्त किसी चरण में लगा रहे ऐसा चित्तरूपी चित्रकूट पुन्य है। ऐसी चित्त की अवस्था पुन्य है।

दूसरा पुन्य है, 'बिहग', पक्षी। चित्रकूट के पक्षी पुन्य है। पक्षी होगा तो पक्षी उड़ेगा। उसको पंख होगी; उड़ेगा। लेकिन पक्षी उड़उड़कर जहां से उड़ा है, लौटता वहीं है। चित्त का पक्षी उड़ेगा। इधर-उधर घूमेगा। लेकिन उसको पता है कि मेरी जगह तो वहीं है, जहां से मैं उड़ा हूं। चिंतन चले चित्त का लेकिन घूमघूमकर ये चिंतन फिर 'योग: चित्तवृत्ति निरोध।' अपने चित्त में स्थिर हो जाये। ऐसा चित्त का होना, मेरी व्यासपीठ उसको पुन्य कहती है।

एक तो हमारा चित्त स्वच्छ हो, सुंदर हो, चारु हो। और उसका चिंतन हरेक वस्तु का चिंतन करे लेकिन चिंतन करते-करते फिर लौटकर अपनी मूल जगह पर आ जाये, वहां विश्राम करे ऐसी चित्त की उडान, मेरी व्यासपीठ उसको पुन्य कहती है। आप कहे कि ये हो कैसे? मुझे तो एक उपाय लगा है, थोडी देर लगेगी।

उसके प्रमाण नहीं दिये जायेंगे, लेकिन चित्त एक जगह ठहर जाये और उस चित्त को पुन्यपुंजकरार जो दिया 'मानस' में ये अनुभव जो करना हो तो कलियुग में एक ही मात्र उपाय है, किसी बुद्धपुरुष के चरणों में अपना मन लग जाये। और एक नियम है जिसके प्रति अत्यंत प्रेम हो जाता है वहां चित्त अपनेआप चला जाता है। ऐसा चित्त है पुन्यपुंज।

तो, 'चित्रकूट के बिहग मृग...' मृग यहां मेरी दृष्टि में मन का प्रतीक है। मृग का एक अर्थ होता है पशु। कोई भी पशु को हम मृग कहते हैं। लेकिन यहां मुझे जो अर्थ निकट पड़ता है, यहां मृग यानी हिरन। हिरन बहुत चंचल है। बहुत कूदकूद करता है। हिरन भागेगा जरूर, लेकिन थोड़े दूर भाग करके तुम्हारी ओर देखेगा। जो मन संकल्प-विकल्पवाला है, भागता है। फिर भी जिस मन को रह-रहकर हरि की स्मृति आ जाये वो मन है पुन्यपुंज।

चित्रकूट स्वयं पुन्यपुंज है। चित्रकूट स्वयं महिमावंत है। चित्रकूट स्थूल रूप में तो पुन्यमय है ही। लेकिन तुलसीदासजी ने चित्रकूट की एक आध्यात्मिक परिभाषा की है कि चित्रकूट मानी क्या? भगवान चित्रकूट क्यों करीब-करीब तेरह साल निवास करते हैं? और 'चित्रकूट रघुनंदन छाए।' भगवान छा गये। कणकण में, रजरज में प्रभु समा गये। इतना चित्रकूट रघुवीर को प्रिय है। आपको पता है? व्रजवासी आज भी कहते हैं कि वृंदावन को छोड़कर एक कदम भी कृष्ण यहां से कहीं गये ही नहीं है। वैसे रामउपासकों की भी एक निष्ठा है कि भगवान राम चित्रकूट छोड़कर एक कदम भी आगे नहीं गये हैं। ये श्रद्धाजगत की बात है।

काश! हमारे मन को ये हिरणी दीक्षा प्राप्त हो! हम संसारी है, इधर-उधर हमारा मन मृग बनकर दौड़े। लेकिन बीच-बीच में उसको हरि को देखने की चाह हो। बड़ा प्यारा है मृग का ये प्रतीक। तो, मनरूपी मृग जैसे घूम-घूमकर फिर उसी दिशा में देखता रहता है, मन की एक ऐसी प्रेममयी स्थिति को मेरी व्यासपीठ पुन्यपुंज कहती है।

बेलि। बृंदावन के योगी तो ऐसा मानते थे कि यदि हमको दूसरा जनम मिले तो हम वृंदावन की लता औषधि बने। वेलि प्रीत का प्रतीक है। पेड़ अपनी खुमारी में है, बड़ा है। लेकिन प्रेम की लतायें इसको कसके लिपट जाती है। लिपटने के लिए आतुर होती है। बेलियां वृक्ष को कसके आलिंगन करती है हरेक तरु को सीताराम समझके। तो, ये जो लताभाव ये पुन्य है। परमपुन्य है।

बिटप मानी वृक्ष। वृक्ष तो परोपकारी है ही। छाया देना, फल देना, ताप को छांव में रूपांतरित करके दूसरों की सेवा करना ये वृक्ष का जो परोपकार भाव है ये भाव यदि हमारे चित्रकूटरूपी चारु चित्त में हो कि हम बड़े हो, घने हो, हमारी छांव में कौओं का आशियाना हो, हम फले-फूले दूसरों के लिए और धूप खुद सहन करे ये है पुन्यपुंज व्यक्तित्व का परिचय है। तो, बिटप, बेलि, तृण, घास। घास पुन्यपुंज है। जिसमें राम-लक्ष्मण-जानकी के चरण पड़े होंगे ये पुन्यपुंज नहीं तो क्या? चैतन्य महाप्रभु तो कहते हैं, बड़े-बड़े वृक्ष की तरह मत बनना, घास की तरह बनना। घास जैसी विनम्रता ये पुन्यपुंजता है।

तो, पुन्यपुंज की श्रेणी में आज इतना ही। आखिर में इतना ही कहकर आगे बढ़ूं कि जो चीज़ आपको दिल से बांटने की इच्छा हो जाये वो पुन्य है। और जो चीज़ आप बुद्धिपूर्वक संग्रह करने की कोशिश करे ये पाप है। मुझे सुख मिला, मैं बांटूं। अच्छी बस्तु, अच्छे दिल से बांटने का भाव, मेरी व्यासपीठ उसको पुन्य कहती है। और जो ठीक नहीं है ये खुद को भी

अशांति देगी। लेकिन उसका संग्रह करने की वृत्ति ये पाप है।

''बापू, आपने दूसरे दिन कहा प्रसन्नता ये पुन्य है, अप्रसन्नता ये पाप है। उस प्रसन्नता के लिए आपने कुछ विधायें बताई। उसमें सत्य और प्रिय सत्य बोलना, इर्षा और निंदा मिटाना, न सोचनीय, चौथी बात बताई, न अहंकार और बाद में बोले, सद्ग्रंथ का पाठ करना और जितना हो सके इतना मौन रखना। बापू, मेरा प्रश्न ये है कि इसमें से नितांत आवश्यक कौन-सी विधायें है?''

आप प्रिय सत्य बोले, निंदा-इर्ष्या न करे, अभिमान से सावधान रहे, 'भगवद्गीता', 'रामचरित मानस' अथवा तो आपका जो प्रिय ग्रंथ हो इसका नित्य पाठ करे और इष्टदेव का स्मरण करे और जहां तक संभव हो मौन रखे। ये पांच बातें; इसमें आप पूछते हैं कि नितांत आवश्यक क्या है? मैं कहता हूं कि सत्य बोले, प्रिय बोले, लेकिन जीव होने के कारण शायद हम सत्य न बोल पाये। अथवा तो बोले तो प्रिय न बोल पाये। तो उसको थोड़ा एक ओर रख सकते हैं। निंदा और इर्ष्या न करे, लेकिन जीव होने के कारण निंदा हो जाये, इर्ष्या हो जाये। हम जीव है, लाख कोशिश करे, अहंकार से मुक्त होने की लेकिन जीव के नाते कभी अहंकार आ ही जाता है। चलो, 'रामचरित मानस' या 'भगवद्गीता' का पाठ करो ही करो, लेकिन पढ़े नहीं है, पढ़ना नहीं आता है, समय नहीं है, रुचि नहीं है, भाव नहीं है, चलो न पढ़ो। लेकिन एक वस्तु मेरी दृष्टि में नितांत है, हरिस्मरण और मौन, ये छोड़ो मत। कुछ भी हो जाये। इन चार को हटाना मैं नहीं कह रहा हूं, लेकिन यदि हटाना पड़े, थोड़ी देर के लिए हम न वो आचरण कर पाये। लेकिन युवान भाई-बहन, जहां तक संभव हो मौन रखो और 'हे हरि, हे हरि' इसको मत छोड़ो। आप स्थूल मौन से भी बहुत से संघर्ष से बच जाते हैं। शरफ़साहब का एक शे'र है -

हजार आफतों से बचे रहते हैं वो,
जो सुनते जियादा हैं, कम बोलते हैं।

हो सके तो चौबीस घंटों में एक घंटा मौन रहना। चलो, रोज न हो तो सप्ताह में एक बार, सप्ताह में न हो तो महिने में एक बार। मौन अच्छा है। फायदा होगा। मौन का एक अपना संगीत है। मौन का एक अपना वैभव है। और उसमें हरिनाम स्मरण, प्रभु का स्मरण।

'मानस-पुन्यपुंज' की कुछ विशेष चर्चा करते-करते कल हम संक्षेप में बिलकुल रामप्राकट्य की कथा गा गये। राम के प्राकटय के कारण पूरी अयोध्या में बहुत आनंदवृद्धि हुई है। चारों भाई बड़े होने लगे। नामकरण संस्कार का समय आया। गुरुदेव वशिष्ठजी आये हैं और नामकरण संस्कार का एक उत्सव हुआ। वशिष्ठजी ने कहा कि राजन्, कौशल्यानंदन, श्यामवर्ण, शोभाधाम इस बालक का नाम लेने से विश्व को आराम, विराम और विश्राम की प्राप्ति होगी। इसीलिए मैं इस बालक का नाम रामचंद्र रखता हूं। राम के समान वर्ण, स्वभाव, सूरत, शील ऐसा बालक जो कैकेयी का पुत्र है, वशिष्ठजी को लगा कि ये विश्व का भरणपोषण करेगा। इसीलिए कहा, इस बालक का नाम मैं भरत रखता हूं। जिसके नाम की स्मृति से व्यक्ति के मन से दुश्मनीभाव मिट जायेगा, वैरवृत्ति खत्म हो जायेगी, इसीलिए इस बालक का नाम मैं शत्रुघ्न रखता हूं। समस्त शुभ लक्षणों का भंडार, रामप्रिय, जगत का आधार, वशिष्ठजी इस बालक का नाम लक्ष्मण रखते हैं। गुरु ने कहा, ये तुम्हारे चार पुत्र वेदों के तत्त्व है। यहां चार भाईयों का नामकरण ये राममंत्र जपनेवालों की तीन जिम्मेवारियां क्या है उसकी चर्चा है। रामनाम का मंत्र लेकर जपनेवाले को चाहिए समाज का भरणपोषण करे, मानी किसी का शोषण न करे। भरत बनकर रामनाम ले। दूसरा, किसी से दुश्मनी न रखे। वैरवृत्ति से रामनाम न ले। और पूरे जगत का भरणपोषण करे, आधार बने। एक के बाद एक संस्कार आगे बढ़ते हैं। चारों भाईयों को यज्ञोपवित संस्कार किया गया। और चारों भाई गुरु वशिष्ठजी के वहां विद्या प्राप्त करने के लिए जाते हैं। अल्पकाल में विद्या प्राप्त करते हैं। और अयोध्या में गुरु के पास जाकर जो औपनिषदीय विद्या प्राप्त की थी वो अपने जीवन में चरितार्थ कर रहे हैं।

कोई बुद्धपुरुष जब कहे कि तू मेरा है तब समझना हम पुन्यपुंज है

बाप, आप सभी को अमरिका की स्वातंत्र्यदिन की बहुत-बहुत बधाई हो; बहुत-बहुत शुभकामना। 'मानस-पुन्यपुंज' जिसकी एक बातचीत के रूप में संवादी चर्चा हो रही है। बहुत से प्रश्न है आपके। संक्षेप में पहले उसको स्पर्श करूं। पूछा है कि 'पुन्य करने की किसीको हम प्रेरणा दे तो इस पुन्य का फल क्या?' मैं बार-बार कहता हूं कि फल की अपेक्षा जहां तक छूटे, अच्छा है। बिना फल की अपेक्षा ही किया गया कर्म उसको पुन्य मानना चाहिए। मैं फलवादी आदमी नहीं हूं, इसीलिए कुछ न कहूं।

दूसरा प्रश्न, 'जिसको सद्गुरु न हो उसको क्या मुक्ति ना मिले?' सद्गुरु न हो तो भी तत्त्वत: ये जीव मुक्त है। हमारे शास्त्रों ने कहा है कि माया के कारण बंधन है। सद्गुरु की जरूरत इसीलिए है कि वो हमें मुक्ति का परिचय करवा दे। मुक्त हम है ही। कोई भी आदमी मुक्त है। मेरी व्यासपीठ ने कई बार कहा है, हम जीवित हो और जीते जी हमारी सभी इच्छाओं की मृत्यु हो जाये तो हम जीवनमुक्त है। लेकिन इसका परिचय, इसकी पहचान कोई बुद्धपुरुष कराता है। इसीलिए बुद्धपुरुष की जरूरत रहती है।

गूर्जियेफ़ एक बात कहा करता था। इतना बड़ा मनीषी। एक अर्थ में वो एक जादूगर की कहानी सुनाता था। वो कहता था कि एक जादूगर था उसके पास बहुत भेड़ें थी। वो मांसाहारी था और रोज एक भेड को काटकर वो खाता था। और कुछ दिनों में सभी भेडों को पता लगने लगा कि ये जो क्रम चला है उस क्रम में हमारी बारी भी आनेवाली है! अब इस दृश्य को देखकर कुछ समझदार भेडें समझ गई कि हमारा पालन-पोषण इसीलिए हो रहा है कि हम में से एक को रोज काटा जा रहा है। तो वो जादूगर जब उसको चराने के लिए जाता था तो कुछ भेडें दूर-दूर चली जाती थी कि शायद जादूगर भूल जाये या तो हमें खोज न पाये। लेकिन जादुगर का तो ये रोज का काम था। देरबदेर वो खोज लेता था। अब पूरी भेड आलम में ये निश्चित्त हो गया कि हमें मरना है। और जादूगर को लगा कि कभी भी धोखा देकर ये भेडें भाग सकती है। एक दिन उसने भेडों का एक संमेलन बुलाया। और उसने संबोधन किया कि मैं भेडों को काटता

हूं। आपमें से जो भेड है उसको ही मैं काटता हूं। आपमें सब भेड नहीं है। आपमें तो कोई शेर है। आपमें तो कुछ बाघ है। कुछ-कुछ कुत्ते हैं। कोई-कोई तो मनुष्य भी है! आपमें तो कोई-कोई फ़रिश्तें भी है! सभी भेडों के मन में इतना ठसा दिया जादूगर ने तो सब खुश हो गई कि अब हमें भागने की जरूरत नहीं है। भेड होगी तो कटेगी! हम तो शेर है! हम तो गाय है। हमें क्या? काटना तो जारी रहा। क्रमशः अपनेआप को आभासी शेर समझकर, आभासी मनुष्य समझकर, आभासी देवता समझकर बारी-बारी से सब कट जाते हैं!

ये प्रवचन करनेवाले भी क्या करते हैं? एक संमोहन पैदा करते हैं कि तुम पापी हो, तुम पतित हो, तुम कुछ नहीं करते! तुम न पुन्य करते हो, न तुमने कुछ सत्कर्म किया है! एक संमोहन है ये। और इस संमोहन से फायदा ये होता है कि भेडें काटी जा रही है! अच्छे ढंग से, अच्छे सूत्रों में भेडें काटी जा रही है! अच्छी बोली में शोषण होता जा रहा है! और सबको ये कह दिया जाय कि आप मुक्त है। तत्त्वतः मुक्त है तो फिर किसके सामने प्रवचन करेंगे? किसके सामने रामकथा करेंगे? कौन सुनने आयेगा?

मेरे भाई-बहन, बुद्धपुरुष की इतनी ही जरूरत है हमारे जीवन में जो हम है उसका हमें भान करा दो, बस। इससे अतिरिक्त कुछ नहीं। उपनिषद का एक सूत्र है, 'कोऽहम्।' रमण महर्षि ने पूरी जिंदगी इतने शब्दों पर पूरी साधना पूर्ण की है, 'Who am I ?' 'मैं कौन हूं?' उसका परिचय करा देनेवाला कोई महापुरुष चाहिए, बस। लेकिन वो महापुरुष जादूगर नहीं होना चाहिए कि भेड काटी जा सके। इसीलिए उसको संमोहित कर दिया जाय। तो, आपने जो पूछा है सीधा-सादा प्रश्न कि गुरु के बिना मुक्ति मिले? जरूर। मुक्ति की बात ही छोड़ो! गुरु मिले तो पहचान कराये। पहचान कराना ज्ञान है। मुक्ति-बुक्ति की बात छोड़ो! हरि भजो। और यार, कौन मुक्ति, क्या मुक्ति? लेकिन कई लोगों को मुक्ति, मुक्ति! हमारे हरीशभाई गाते रहते हैं -

पहोळा पथारा चोगम पाथर्या,
जाते लियो रे संकेली.
कोट रे कायाना बेली! खडभड्या.
काळे चांपी रे सुरंगो.
खांगा थया रे कोठाकांगरा,
डूक्यां उधमाती अंगो.

और जगद्गुरु शंकराचार्य ने भी कहा -

अंगं गलितं पलितं मुंडं...

ये समाज को निराश कराने के लिए, डराने के लिए नहीं थे ये सब सूत्र। ये सावधान करने के लिए थे। ये होश रहे इसलिए थे। भगवान महावीर स्वामी को किसी ने पूछा कि जागृत आदमी कौन? 'असूता मुनि', ऐसा मुनि जो सोया नहीं है। इसका मतलब महावीर स्वामी सोते नहीं होंगे ऐसी बात नहीं। शरीर को निद्रा चाहिए। आप और हम देखते हैं, शरीरशास्त्र ये तो पढ़ने का भी शास्त्र है, लेकिन शरीरशास्त्र एक बहुत बड़ा आध्यात्मिक शास्त्र भी है। प्रतिपल तुम्हारे और मेरे शरीर में परिवर्तन हो रहा है साहब!

कज़ा को रोक देती है दुआं रोशन ज़मीरों की।
भला मंजूर है अपना तो कर खिदमत फकीरों की।

कोई पहुंचा पुरुष जो हमें पहचान करा दे; हम होश में रहे कि हमें धीरे-धीरे जाना है। शरीरधारी कोई भी व्यक्ति होगी, शरीर में परिवर्तन आयेगा। शरीरधारी को कुछ धर्म लागू होता है। और मानो चौबीस घंटों कोई न सोये तो कोई योगी होगा, कोई लक्ष्मण होगा। ये अपवाद है, सिद्धांत नहीं बन पाता। एक दो चेलों से मैंने सुना है, जो मुझे कहते हैं, हमारा गुरु तो सोता ही नहीं है! तो इसका मतलब तुम भी तो जागते रहते हो! अकारण व्यक्तियों का प्रभाव हम बढ़ा देते हैं! क्योंकि हमें स्वाभाविक जीना ठीक नहीं लगता! सोचो तो!

जिन्ह कें कपट दंभ नहिं माया।
तिन्ह कें हृदय बसहु रघुराया।।

अभी आप युवान है। आप जरूर विस्तरो। आपको बहुत करना है लेकिन एक उम्र के कगार पर

पहुंचे उसको धीरे-धीरे संकेलना होगा। कन्या बड़ी हो जाती है तो कोई श्रेष्ठ को हम सौंप देते है। वैसे संस्थायें भी बड़ी हो जाये तो श्रेष्ठों के हाथ में सौंप देनी चाहिए। ठीक कहा तथागत बुद्ध ने, 'सम्यक्ता।' युवान भाई-बहनों को तो आगे बढ़ना है, लेकिन ये होश भी रखना है कि ये कुर्ता जीर्ण होनेवाला है। तो, सद्गुरु की जरूरत है केवल मुक्ति की पहचान करा दे कि तेरे पास ओलरेडी है।

सामान्य प्रश्न है कि 'बापू, माँ-बापे दीकरीने घरे रहेवुं पाप कहेवाय?' नहीं। रही शकाय। माँ-बाप बेटी के घर रह सकते हैं। हां, जरूर हम मानते है कि बेटी का हम न खाये, लेकिन ऐसी परिस्थिति हो और माँ-बाप बेटी के घर रहे वहां बेटे और बेटी का भेद छोड़ दो। बेटी सवायो बेटो छे! कुछ बातों में तो संशोधन करना ही पड़ेगा, करना चाहिए। बेटी के घर रुक सकते हैं माँ-बाप। ये मेरा व्यक्तिगत जवाब है।

'गुरुनी सेवा करवी अने परिवारनी जरा पण न करवी एने पुन्य कहेवाय?' न कहेवाय। जादूगर गुरु नहीं होगा गूर्जियेफ़वाला तो ये साफ कहेगा कि ये पुन्य नहीं है, पाप है। इसीलिए तो हमारे देश का उपनिषद का वाक्य है। वाक्य तो गुरुओं का है, लेकिन वाक्य क्या है? 'मातृ देवो भव।' तेरी माँ को तू देव मान। 'पितृ देवो भव', आचार्य तो तीसरे स्थान पर गया है। तो, परिवार की सेवा करो। इसमें सच्चा गुरु राजी होगा।

'पोतानो स्वभाव छुपावे अने प्रभाव बहार बतावे एनुं अमारे शुं करवुं?' एनुं हवे हुं ये शुं करुं? आज बहु दुःखी-दुःखी माणसोना सवाल छे हो! मने एम के अमेरिकामां तो बधा सुखी ज हशे! पण अरर्र...! अमे अहींया लहेर करवा आव्या, त्यां तो तमारा दुःखना ढगला अमारी उपर नाख्या! एक कथा में मुझे ऐसा यजमान मिला कि मैं भोजन करने बैठुं तभी से रोना शुरू करे, बापू, मारा दीकरा ने आम थ्युं, तेम थ्युं! एला पण तुं मने खावा तो दे! तुं अत्यारे तो रे'वा दे! मारा बाप! हकीकतमां नवे नव दि' में केम काढ्या छे ए तो आ मारो हनुमान जाणे! पछी पाछा कथा पूरी थया पछी कहे, बापू, मैं तमने बहु दुःखी कर्या!

'आपना अभिप्राय प्रमाणे कोई एवुं एक पुन्य बताओ जे करवाथी अमारां पाप अने पुन्य बंने खतम थई जाय।' हरिनाम, हरिनाम, हरिनाम। एक मात्र पुन्य है। सवाल भरोसे का है। बाकी मेरा जो अनुभव है, केवल परमात्मा का नाम। इससे सरल कोई नहीं है। लेकिन अतिशय सरल वस्तु जो आती है, आदमी को जल्दी दिमाग में बैठती नहीं है! दोनों से निर्द्वन्द्व यदि होना है तो कलियुग में, कलियुग में क्या चतुर्युग में एक ही मात्र अनुभव और ये है हरिनाम। तुम्हारा जो प्रिय नाम हो राम, शिव, अल्लाह, बुद्ध, महावीर, जिसस, माँ दुर्गा, कोई भी लो, क्या फ़र्क पड़ता है? तत्त्वतः एक ही ब्रह्म है। कोई भी नाम लेने की छूट है, क्योंकि असल में उनका कोई नाम नहीं है। ये अरूप है, ये अनाम है। और तत्त्वतः देखो तो सभी नाम उनके हैं।

'बापू, आपने एम्प्टी रूम की बात जो कही आपने तो मन में कई सवाल पैदा हुए हैं कि इस शून्य कमरे में बैठकर क्या करना? कुछ करे या कुछ न करे? क्या ये एक्सपिरियन्स रिवर साईड या हिल टोप ऐसी कोई जगह पर हो सकता है?' यस, हो सकता है। मैंने थोड़ा अनुभव किया है वेनकुअर में, जब पहली बार मैं रामकथा लेकर इस पश्चिम की भूमि पर आया था। और ये पहली मेरी टूर थी केनेडा की। मैं अकेला और वेनकुअर में मैंने कथा की। जिसके घर में ठहरा था वो पति-पत्नी भी जोब पर चले जाते थे मुझे अकेला छोड़कर! थेपला-बेपला बनाकर रख देते थे! मैं अकेला रहता था। मुझे एकांत प्रिय है। ये मेरा स्वभाव है। यजमान ने कहा, बापू, एक हिल पर आपको रोप-वे में पहुंचायेंगे, आप वहां बैठेंगे? फिर शाम को हम आपको ले जायेंगे। मैंने कहा, बहुत अच्छा, आप जोब पर जाओ, मुझे वहां पहुंचाओ। मैं वहां बैठूंगा और शाम को आप ले आना मुझे। तो, कुछ साथ में शींगदाणा या सेव-ममरा कुछ ले लेता था। टोच पर मैं बैठता था। कोई नहीं, अकेला। और मुझे बराबर याद है, उसी समय मेरी एक ही गुनगुनाहट रहती थी, 'चिदानंद रूपः शिवोऽहम् शिवोऽहम्।' या तो 'रुद्राष्टक।' दो ही में मेरा मन रमा रहता था। कुछ दिन के

बाद ऐसी ईच्छा होने लगी थी कि शाम न हो! ये मुझे लेने न आये! तो, पहाड पर या कहीं भी ये अनुभव हो सकता है।

'बापू, सद्गुरु की यूझ की हुई कोई चीज सद्गुरु साधक को दे उसके लिए साधक को धीरज रखनी योग्य है कि साधक कोई चीज़ के लिए बिनती कर सकते हैं? और ऐसी बिनती करे तो गुरु को दु:ख पहुंचे?' ठीक है, बालभाव से आप मांग भी सकते हैं। इसमें कोई आपत्ति नहीं है। लेकिन धैर्य धारण करना ज्यादा अच्छा है। भरत ने मांगा। अब मांगने में सुजाव नहीं होना चाहिए, आप मांग सकते हैं।

मैं एक श्लोक लेकर आया हूं। 'महाभारत' में पुन्यशाली घर कौन उसका एक लिस्ट दिया है। बहुत सीधे-सादे सूत्र है। धृतराष्ट्र को नींद नहीं आती है 'महाभारत' की जो बात है उसमें। संजय ने सब बातें बता दी है। और फिर एक अनिद्रा उसको लागू हुई है। और फिर वो महात्मा विदुर के पास अपनी चिंता के लिए जाते हैं। और बहुत अच्छे प्रश्न पूछते हैं। मुझे ये बात अच्छी लगती है कि ये धृतराष्ट्र अंध है, उसके मन में रोष भी तो कोई कम नहीं है, लेकिन ये प्रश्न अच्छा पूछते है। यद्यपि प्रश्न के जवाब से उसमें कोई सुधार नहीं हुआ, ये बात ओर है! ये वो जाने।

तो बाप, सात वस्तु जहां हो उस स्थान को, उस घर को पुन्यमय घर समझना, कल्यानमय घर समझना।

तपो दमो ब्रह्मवित्तं विताना:
पुण्या विवाहा: सततान्नदानम्।
येष्वेवैते सप्त गुणा वसन्ति
सम्यग्वृत्तास्तानि महाकुलानि।।

चार स्थान। 'तपो।' पूरा घर नहीं, लेकिन तुम्हारा चार-पांच-सात व्यक्ति का परिवार हो इनमें यदि कोई एक व्यक्ति तपस्वी जैसा जीवन जीती हो तो समझो तुम्हारा घर पुन्यशाली है। और तपस्वी की व्याख्या फिर करनी पड़ेगी कि क्या उपवास करता है वो तपस्वी? रात-रात सोता नहीं वो तपस्वी? तपस्वी की व्याख्या फिर इक्कीसवीं सदी के संदर्भ में करनी होगी। सबसे पहले तो तपस्वीपना तो ये है कि घर में पारिवारिक समस्याओं चारों ओर घीरी हो और घर की एक व्यक्ति उनमें बिलकुल निर्दोष हो फिर भी सबके आरोप अपने उपर लेकर मुस्कुराता हुआ सहन कर ले। ऐसा तपस्वी जिस परिवार में होगा उनका घर पुन्यमय घर है। सहना बहुत कठिन है। वो जागा हुआ आदमी तपस्वी है। घर का ये महादेव है जो विष अकेला पीये और सुख परिवार को बांट दे। पूरी बदनामी, पूरा अपमान, पूरी गेरसमज ये सब अकेला पी जाय ऐसा कोई व्यक्ति जो युवान हो, बड़ा हो, छोटा हो, भाई हो, बहन हो, परिवार में हो, तो समझना घर में भले ओर सुविधा नहीं है, लेकिन पुन्य निवास कर रहा है।

'महाभारत' के विदुर का ये वचन है। दम मानी संयमित जीवन। मैं कोई आदेश तो देनेवाला आदमी नहीं हूं और मेरा आदेश देने का अधिकार भी नहीं, लेकिन मैं बिनती जरूर कर सकता हूं, आप कथा के इतने प्रेमी है तो कुछ ऐसी-तैसी खानीपीनी आप नहीं छोड़ सकते, धीरे-धीरे? 'ब्रह्मवित्तम्।' जिसके घर में ब्रह्म की चर्चा हो; दो मिनिट, पांच मिनिट भगवद्चर्चा हो। कोई अच्छा स्वाध्याय हो, कुछ अच्छी बातचीत हो। 'वित्त' का एक अर्थ है धन। हमारे घर में ब्रह्म का वित्त हो, ये घर पुन्यशाली का घर है। साधु जहां भिक्षा ले सके ऐसे आंगन है ये। चौथा शब्द है, 'वितानाम्।' वितानां यानी मंडप, मांडवो। वहां मंडप का अर्थ है यज्ञमंडप। जिसके घर में रोज यज्ञ होता हो, समझना ये पुन्यशाली का घर है। मैं कहूं इसीलिए आप फिर यज्ञकुंड बनाकर यज्ञ करने लगे! करो तो अच्छी बात है, लेकिन घर की माता-बहन-बेटी अपने चूले में जो इंधन हो, आज के संदर्भ गेस हो कुछ भी हो, वो परिवार के लिए, ठाकोरजी को भोग लगाने के लिए, अतिथि के लिए जो रसोई बनाये इसके लिए जो चुल्हा चेताया जाय वो यज्ञ है। विज्ञान है। यज्ञ की उपासना ये भारतीयों की प्रथम देन है। ऋग्वेद तो 'अग्नि' शब्द से ही शुरू होता है। हम अग्निपूजक है। देहातों में पहले अग्नि को भोग करके आदमी भोजन करते

थे। ये बड़ी प्यारी पद्धति थी।

'पुन्याविवाहा'; विदुरजी कहते हैं, जिसके घर में पवित्र विवाह संबंध से जुड़े पति-पत्नी परस्पर प्रेम से जीते हो ये घर पुन्यशाली है। उसको पुन्यशाली का घर माना गया है जिस घर में पति-पत्नी परस्पर प्रेम से रहते हैं। प्रसन्न दांपत्य पुन्यशाली घर है। मुश्किल है! दांपत्य बहुत बिगड़ता जा रहा है। आगे का सूत्र, 'सतत अन्नदानं।' जिसके घर में रोज अन्नदान होता है। कोई न कोई अतिथि आता है तो उसको भोजन कराया जाता है उसका घर पुन्यशाली घर है। उपनिषदकार ने कहा है, 'अन्नं ब्रह्मेति व्यजानात्।' अन्न ब्रह्म है, ऐसा भारतीय उपनिषदकारों ने कहा है। अन्नदान ये हमारे भारत की रीत है, अवश्य। रोटी देना, भोजन देना। और यद्यपि ये परंपरा कभी क्षीण नहीं हुई है, लेकिन कभी-कभी शायद कोई देशकाल में हुई है तो समय-समय पर कोई एक ऐसी हस्ती आ जाती है तो फिर वो शुरू करवा देती है। फिर कोई जलाराम बापा आ जाता है। फिर कोई वीरबाई माँ आ जाती है। और आखिर में विदुर ने बताया कि पुन्यशाली कुल के ये लक्षण है उनमें आखिर का लक्षण ये है कि परिवार में कुछ भी हो जाये तो भी जिस घर का कलह अदालतों में न जाय ये पुन्यशाली घर है। मैं समझ रहा हूं आज-कल के देशकाल में ये प्रासंगिक नहीं माना जायेगा, क्योंकि ये देशकाल ऐसा है। लेकिन जहां तक संभव हो। ये हम सब कर सकते हैं ऐसे पुन्यमय कर्म है।

हम सम पुन्य पुंज जग थोरे ।
जिन्हहि रामु जानत करि मोरे ।।

भगवान राम-लखन-जानकी की वनयात्रा है। भील वनवासी लोग जो रास्ते में जो मिलते हैं, प्रभु के दर्शन करते हैं और अत्यंत अनुराग के साथ अपने-अपने भाग्य की सराहना करते हैं। वहां ये पंक्ति आई जहां फिर एक बार 'पुन्यपुंज' शब्द का प्रयोग गोस्वामीजी ने किया। ये कौलकिरात, ये वंचित, ये उपेक्षित, ये समाज के आखिरी वर्ग के लोग बोल रहे हैं कि हमारे जैसे पुन्यपुंज रस जगत में बहुत कम होंगे। ये गरीब लोग बोल रहे हैं। राम के दर्शन के बाद इन लोगों का ये वक्तव्य 'मानस' में आया है कि 'हम सम पुन्य पुंज जग थोरे।' इस जगत में हम सब इतने पुन्यवान है कि हमारे समान जगत में कोई पुन्यशाली नहीं है। कारण? बड़ा प्यारा कारण तुलसी बताते हैं-

जिन्हहि रामु जानत करि मोरे।

जिसको राम अपने समझकर मानते हैं। परमात्मा हमको अपना समझे। हम सब तो कहे कि परमात्मा मेरे है, लेकिन हम इसीलिए पुन्यपुंज है कि भगवान राम हमको अपना मानते हैं।

पांच तत्त्व हमें अपना समझे तब पुन्यपुंज अपनी जात को समझना। और जब हमें महसूस हो कि ये लोग हमें अपना कहते हैं। इसमें एक 'मंत्र।' हम क्या कहते हैं कि ये मेरा मंत्र है। 'राम' मेरा मंत्र है। 'ॐ नम: शिवाय' मेरा मंत्र है। 'गायत्रीमंत्र' मेरा मंत्र है। अच्छी स्थिति है। ये पुन्य है कि हम कहे कि ये मेरा मंत्र है। ये भाव पुन्य है, मैं कुबूल करूं, लेकिन 'पुन्यपुंज' नहीं है। जपते-जपते सिद्ध हुआ मंत्र जब साधक को कहे कि अब तू मेरा है, तब अपनेआप को पुन्यपुंज समझना। और एक बस्तु याद रखना, इसको कोई लेबोरेटरी में प्रयोग करके सिद्ध नहीं किया जा सकता। लेकिन हमारे देश के ऋषिमुनियों ने ये अनुभव किया मंत्रशास्त्रों में कि मंत्र बोलते हैं। जीव मंत्र का उच्चारण करता है वैसे मंत्र जीव को बुलाता है। मंत्र बोलता है।

कबीरा मन निर्मल भयो जैसो गंगा नीर।
पिछे पिछे हर फिरे कहत कबीर-कबीर।।

स्वयं साहेब कबीर को पुकारे! तो जब मंत्र कहे! बहुत लंबी यात्रा है, बहुत लंबी प्रक्रिया है। दूसरा, कोई भी सद्ग्रंथ। मैं 'मानस' लेकर घूमता हूं तो मैं कहूंगा कि 'मेरा मानस', 'मेरी व्यासपीठ', 'मेरी कथा'; ऐसा एक व्यवहार के कारण मुझे 'मेरा-मेरा' बोलना पड़ता है। ये एक व्यवहार है। लेकिन मोरारिबापू पुन्यपुंज तब माना जायेगा जब 'मानस' मुझे कभी कहे कि मोरारि, तू मेरा है। जब ये शास्त्र स्वयं वरण करे। मुझे ऐसा अनुभव रहता है कि इस शास्त्र पर ये आदमी बोले ऐसा वरण शास्त्र स्वयं करता है। हम वरण करे ये तो अच्छी बात है कि चलो

'भगवद्गीता' बोले, 'मानस' बोले, गाये। लेकिन शास्त्र वरण करे कि तू मेरा है, तब समझना हम पुन्यपुंज है।

तीसरी वस्तु; ये सब थोड़ी अनुभव करने जैसी बातें है। मैं कहूंगा कि ये माला मेरी है, ठीक है? मेरे से मांगा तो मैंने मना कर दिया कि ये गुरु की माला है। मैं रखता हूं इसीलिए मेरी है, ठीक है? लेकिन भजन-जगत का ये भी अनुभव संतों को हुआ है; खास करके बादशाह राम को। गोस्वामी तीरथराम वेदांती थे। लेकिन शुरू-शुरू में बादशाह राम रुद्राक्ष की माला धारण किया करते थे। पूरणसिंघ उसके बहुत निकट के साथी या शिष्य कहो, उसने कई रहस्य बादशाह राम के खोले हैं। तो, पूरणसिंघ का ऐसा मंतव्य है। वो अपने अनुभव में लिखते हैं कि एक दिन भृगुगंगा में बादशाह राम स्नान करके आये और फिर अपनी माला खोजने लगे। पूरणसिंघ उसको साथ दे रहे थे। पूरणसिंघ अनुभव में लिखते हैं कि कुटिया से आवाज़ आई कि बादशाह, मैं तेरी माला यहां हूं! बिस्तर, एक छोटा-सा सिरहाना और वहां ये माला पड़ी थी! अब उनको श्रद्धाजगत कहो, कोई बात नहीं। इसको चमत्कार मत कहना। हमारे जीवन में ये नहीं बन पाता इसका मतलब ये सिद्धांत बन जाय ऐसा हम सिद्ध नहीं कर सकते। हमारे यहां मूर्तियां बोल सकती है ये भी तो 'रामचरित मानस' का सत्य है।

चौथा है बुद्धपुरुष। हम तो कहते हैं, ये मेरे गुरु, ये मेरे बुद्धपुरुष। लेकिन बुद्धपुरुष साफ-साफ कहे कि तू मेरा, वो पुन्यपुंज है। तो ये है पुन्यपुंजता। और पांचवां इष्ट। स्वयं परमात्मा। साक्षात् हरि, साक्षात् परमात्मा, परमतत्त्व जब स्वयं कहे। और तुलसीदासजी के जीवन में एक ही अपेक्षा थी। कहते रहते थे कि एक बार राम मुझे कहे कि 'तुलसीदास मेरो।' मैं तो कहूं कि राम मेरा है, राम मेरा सबकुछ है, लेकिन स्वयं राम कभी बोले कि तुलसी तू मेरा है। परमात्मा जब कह दे कि तू मुझे प्रिय है। तू मेरे ज्ञान का भाजन है। तू मेरी करुणा का भाजन है। तू मेरे सत्य का भाजन है। तू मेरी प्रीत का भाजन है। ये पुन्यपुंजता है।

'रामचरित मानस' में आता है, 'सोई अति प्रिय भामिनि मोरे।' जो ऐसा-ऐसा जीता है, शबरी से प्रभु ने कहा, मैं उससे प्यार करता हूं। कोई बुद्धपुरुष जब ये कहे सामने से कि तू मेरा है, तब समझना हम पुन्यपुंज है। पुंज का एक अर्थ होता है पूंजी, बहुत बड़ी संपदा। हम प्रतीक्षा करे कि कभी मंत्र हमें कहे कि मैं तेरा हूं। कभी माला कहे। और उसका फिर शायद किसी को अनुभव हो तो उसकी उद्घोषणा मत करते रहना। ये कोई सार्वजनिक करने जैसी बात नहीं है। हमारे यहां शास्त्रों में कथन है कि बहुत अच्छा सपना आया हो, जिसमें कोई आध्यात्मिक संकेत हो, अपने गुरु के सिवा किसी को मत कहना। ऐसा हमारे यहां एक नियम-सा है।

तो मंत्र, माला, शास्त्र, बुद्धपुरुष अथवा तो इष्टदेव। हमारी परंपरा में दो है। एक कुलदेव है, एक इष्टदेव है। कुलदेव और इष्टदेव में फ़र्क समझियेगा। कुलदेव और इष्टदेव में अंतर है। कुलदेव परंपरा में आता है कि किसी का कुलदेव फल्ला, किसी का कुलदेव फल्ला। कुलदेव पूरे परिवार का एक होता है। करीब-करीब पूरी जाति का, पूरी परंपरा का एक होता है। लेकिन इष्टदेव वो है जो सबके निजी होते हैं। सबके अपने होते हैं। एक ही परिवार में किसी का इष्ट राम है। किसी का इष्ट कृष्ण है। किसी का बुद्ध हो सकता है। कोई सूफी है तो अल्लाह को मानता हो, कोई इसाई है तो जिसस को इष्ट माने। पूरे परिवार का एक इष्टदेव हो बहुत अच्छी बात है, लेकिन वहां स्वतंत्रता होनी चाहिए। सबका अपना-अपना इष्टदेव हो। और कुलदेव की पूजा की जाती है। इष्टदेव से प्रेम किया जाता है। साल में एक बार कुलदेव की पूजा करने जाते हैं। लेकिन इष्टदेव सालाना मौसम नहीं है। इष्टदेव प्रतिपल है। इष्टदेव में पूरा का पूरा समर्पण होना होता है। तो, मेरे श्रावक भाई-बहन, इष्टदेव एक होता है चाहे उसका कोई भी नाम हो। तो इष्टदेव जब हमको कहे कि तू मेरा है, इष्टदेव अपने को अपना समझे इसके समान जगत में कौन पुन्यपुंज है?

कथा के क्रम में, शिव और पार्वती का विवाह होता है। शिव है विश्वास और पार्वती है श्रद्धा। ये सारी

कथा में हकीकत होते हुए शाश्वत बातें करती है, साधना की बातें करती है कि व्यक्ति के जीवन में श्रद्धा और विश्वास का जब तक मिलन नहीं होगा तब तक रामकथा का जनम नहीं होगा। उसके बाद भगवान शिव कैलास के शिखर पर बैठे हैं। पार्वती प्रश्न करती है, भगवन्, मुझे बताईए रामतत्त्व क्या है? और भगवान शंकर रामकथा कहते हैं। भगवान राम ने विश्वामित्रजी के यज्ञ की रक्षा की। अहल्या का उद्धार किया। अहल्या का प्रसंग मुझे बार-बार कहने की इच्छा होती है हंमेशा क्योंकि अहल्या वर्तमानजगत का भी सत्य है और आनेवाले जमाने का भी सत्य होगी कि इस दुनिया में भूल कौन नहीं करता? किससे भूलें नहीं होती? लेकिन भूल होने के बाद अहल्या की तरह जो स्थिर हो जायेंगे उसके घर स्वयं राम आयेंगे। कोई संत राम को लेकर आयेगा और हमारे उद्धार का प्रयास करायेगा।

अहल्या का उद्धार करके प्रभु गंगा के तट पर आये। गंगास्नान किया। भगवान जनकपुर पहुंचे। जनकराज ने स्वागत किया। सुंदरसदन में प्रभु को ठहराया। सायंकाल को भगवान ने नगरदर्शन के लिए योजना बनाई और जनकपुरी को अपने रूप और नाम में डूबो दिया। दूसरे दिन पुष्पवाटिका में भगवान पुष्पचयन के लिए जाते हैं। वहां जानकीजी और राम की पहली मुलाकात होती है। और एक-दूसरे, एक-दूसरे के प्रति हृदय से समर्पित हुए हैं। भवानी के मंदिर में फिर जानकीजी आई। और गौरी की स्तुति करती है। भवानी ने आशीर्वाद दिया, तुम्हें राम मिलेगा। सखियों के संग जानकीजी घर आई। रामजी फूल चुनकर गुरु की पूजा करते हैं। आशीर्वाद प्राप्त करते हैं।

अगले दिन धनुषयज्ञ संपन्न होता है। प्रभु घड़ी के मध्य में धनुषभंग करते हैं और जानकी जयमाला पहना देती है। परशुराम आये। लेकिन परशुराम की बुद्धि के द्वार जब खुल गए तब परशुरामजी भगवान राम की स्तुति करते हुए अपनी साधना में चले जाते हैं। दूत अयोध्या गए। महाराज दशरथजी बारात लेकर आए। और मागशर शुक्ल पंचमी, गोरज बेला राम और जानकी के ब्याह का समय निश्चित्त हुआ। राम-जानकी का ब्याह। लक्ष्मण-ऊर्मिला, श्रुतकीर्ति-शत्रुघ्न और भरत-मांडवी चारों राजकुमार मिथिला की चारों राजकन्याओं के साथ पुन्य विवाहग्रंथि से जुड़ जाते हैं। रास्ते में मुकाम करते-करते अवधपति का समाज अयोध्या पहुंचता है। विश्वामित्रजी की बिदाई की बेला आई और पूरा राजपरिवार थोड़ा ढीला हो गया। और संत की विदाय के समय दशरथजी बहुत प्यारे बचन बोले -

नाथ सकल संपदा तुम्हारी।
मैं सेवकु समेत सुत नारी।।

संत से क्या मांगना चाहिए ये तुलसी ने बहुत अद्भुत ढंग से पेश किया। 'बालकांड' को तुलसीजी पूरा करते हैं।

> मैं 'मानस' लेकर घूमता हूं तो मैं कहूंगा कि 'मेरा मानस', 'मेरी व्यासपीठ', 'मेरी कथा'; ऐसा एक व्यवहार के कारण मुझे 'मेरा-मेरा' बोलना पड़ता है। ये एक व्यवहार है। लेकिन मोरारिबापू पुन्यपुंज तब माना जायेगा जब 'मानस' मुझे कभी कहे कि मोरारि, तू मेरा है। जब ये शास्त्र स्वयं वरण करे। मुझे ऐसा अनुभव रहता है कि इस शास्त्र पर ये आदमी बोले, ऐसा वरण शास्त्र स्वयं करता है। हम वरण करे ये तो अच्छी बात है कि चलो 'भगवद्गीता' बोले, 'मानस' बोले, गाये। लेकिन शास्त्र वरण करे कि तू मेरा है, तब समझना हम पुन्यपुंज है। कोई बुद्धपुरुष जब सामने से ये कहे कि तू मेरा है, तब समझना हम पुन्यपुंज है।

मानस-पुन्यपुंज

॥ ९ ॥

'मानस' स्वयं पुन्यपुंज हैं

'मानस-पुन्यपुंज' जिसकी गुरुकृपा से सहज जो चर्चा चली हम उसमें संवाद कर रहे थे। आज आखिरी दिन उसकी कुछ बातें करके कथा को विराम दिया जायेगा। इससे पहले कथा का थोड़ा उपर से दर्शन कर लिया जायेगा। कल राम-सीता विवाह की कथा ऐसे ही मैंने बोल दी। फिर आप जानते हैं कि 'अयोध्याकांड' में अतिशय सुख के बाद रामवनवास का दु:खमय अध्याय शुरू होता है। राम-लक्ष्मण-जानकी चौदह साल के लिए वनवासी हुए। महाराज व्याकुल है। सुमंत रथ लेकर शृंगबेरपुर पहुंचता है। वहां भगवान राम रात्रिमुकाम करते हैं। गंगा के तट पर केवट से नौका मांगकर प्रभु गंगापार हुए। सामने तट प्रभु एक रात रुकते हैं। उसके बाद पदयात्रा शुरू होती है। प्रयागराज में भरद्वाजजी के मेहमान होते हैं प्रभु। उसके बाद भरद्वाजजी के मार्गदर्शन में प्रभु चित्रकूट पहुंचते हैं।

चित्रकूट को तुलसीदासजी ने आध्यात्मिक अर्थ में चित्त का वन बताया है। चित्रकूट मानी चित्त। भगवान चित्रकूट में बहुत समय रहे। यहां सुमंत लौट आते हैं। दशरथजी प्राणत्याग करते हैं। भरत ने आकर क्रिया की। सबने मिलकर निर्णय लिया कि हम सब चित्रकूट जाये और वहां भगवान जो आज्ञा दे सो करे। और पूरी अयोध्या चित्रकूट की यात्रा करती है। उधर से जनक महाराज भी आते हैं। और फिर निर्णय होता है कि भरत लौट जाये। चौदह साल के बाद जो निर्णय करना हो, करे। भरत पादुका का प्रसाद प्राप्त करके लौटते हैं। पादुका को सिंघासन पर रखकर चौदह साल की राज्यव्यवस्था भरत ने एक सेवक बनकर निभाई। आप जानते होंगे, विश्ववंद्य गांधीबापू को ट्रस्टीशीप का विचार इस प्रसंग से आया है। भरतजी भी नंदिग्राम में पर्णकुटि बनाकर तपस्वी बनकर राज्य का संचालन करते हैं। भरत के अगाध और अनूपम प्रेम की चर्चा करते हुए तुलसी 'अयोध्याकांड' को विराम देते हैं। मैंने कई बार कहा है कि 'रामचरित मानस' का प्रथम खंड है वो सत्य का है। बीचवाला खंड है वो प्रेम का है। और अंतिम खंड जो है वो केवल और केवल करुणा का खंड है। सात सोपान में विभक्त 'रामचरित मानस' तीन भाग में, सत्य, प्रेम और करुणा में समाहित है।

'अयोध्याकांड' के बाद प्रभु का स्थलांतर होता है। भगवान चित्रकूट से आगे निकलते हैं और अत्रि के आश्रम में प्रभु जाते हैं। अत्रि ने प्रभु की स्तुति की -

नमामि भक्त वत्सलं । कृपालु शील कोमलं ।।
भजामि ते पदांबुजं । अकामिनां स्वधामदं ।।

उसके बाद भगवान वहीं से यात्रा आगे बढ़ाते हैं। सरभंग नामक एक महात्मा को मिलकर, सुतीक्ष्ण नामक एक प्रेमी भक्त को मिलकर कुंभजऋषि के पास भगवान आए। और फिर कुंभज के मार्गदर्शन पर प्रभु गोदावरी के तट पर पंचवटी में आते हैं। रास्ते में गीधराज जटायु से प्रभु मैत्री करते हैं। पंचवटी में प्रभु निवास करने लगे। एक दिन लक्ष्मणजी ने पांच आध्यात्मिक प्रश्न रामजी से पूछे है। और प्रभु उसके उत्तर देते हैं। उसके बाद शूर्पणखा आती है। दंडित होती है। खर-दूषण, त्रिशरा को बहकाया गया। प्रभु ने सबको वीरगति और निर्वाण प्रदान किया। यहां शूर्पणखा रावण की लंका में जाकर उकसाती है।

रावण योजना बनाकर सीता का अपहरण करने के लिए मारीच का साथ लेकर आता है। दरमियान भगवान ने युक्ति बना ली कि वनवास का अब आखिरी वर्ष है, मैं मेरी ललित नरलीला करूं। लक्ष्मणजी फल-फूल लेने गए। भगवान और जानकी अकेले हैं। और सीताजी ने प्रभु ने कहा कि आप अग्नि में समा जाओ। आपका प्रतिबिंब, छाया मेरे पास रखो। यहां मारीच को लेकर रावण सीता का अपहरण करता है। मैं आप से एक ओर संकेत भी करना चाहूं कि रावण सीताजी के आश्रम में आता है और वहां लिखा है, रावण ने सीताजी के चरणों में मन ही मन प्रणाम किया। अब सीता को प्रणाम करता हुआ रावण अच्छा लगता है। इतने समय के लिए तो वो सराहनीय है ही। लेकिन जब जानकीजी ने कहा कि -

कह सीता सुनु जती गोसाईं ।
बोलेहु बचन दुष्ट की नाईं ।।

तो, उसी समय रावण एकदम कूपित हो जाता है! एकदम क्रोध में आकर जानकी का अपहरण कर लेता है! एक क्षण पहले जो आदमी प्रणाम कर रहा था, दूसरी क्षण में वो अपहरण कर रहा है! जीव की मनोदशा का ये दृष्टांत है। हमारे जीवन में भी ऐसा होता है कि एक क्षण के पहले हमारे मन में किसी के प्रति सद्भाव होता है और दूसरी ही क्षण हमारी मानसिकता के अनुकूल जवाब नहीं मिला तो हमारे मन में उनके प्रति तुरंत द्वेष-घृणा! कुछ आवेश में हुए किसी के वर्तन पर तुरंत महोर मत लगा देना! जरा प्रतीक्षा करना। दूसरा प्रसंग सुग्रीववाला है। वालिवध हुआ। सुग्रीव को भगवान ने राजतिलक कर दिया और सुग्रीव को गादी पर बिठाया उस समय सुग्रीव जो बचन बोलते हैं! बड़ा ज्ञानी, बड़ा वैरागी जैसा! एक क्षण लगता है कि ये सुग्रीव संन्यासी है! लेकिन चार महिने में आदमी बदल जाता है! समृद्धि मिली, राज मिला, सुंदर स्त्री मिली और विचार बदल जाता है! ये मानवीय मन की दशा है। और कुंभकर्ण को जब जगाया कि भाई, जाग, मेरे पर बहुत खतरा है। और कुंभकर्ण जब जागा, सब बातें रावण ने कही कि मैंने सीता का अपहरण किया, राम आये हैं, लड़ाई चल रही है! तो तुलसी कहते हैं कि राम का नाम सुनते ही मग्न हो गया, मानो ध्यानस्थ हो गया! लेकिन मेरे सावधान गोस्वामीजी कहते हैं, 'मगन भयउ छन एक।' रावण ने शराब के घडे मंगवाये और आमिष भोजन मंगवाया। ये खिलाया और तुरंत उसका स्वभाव बदल गया! जो एक क्षण के लिए मगन हो गया था वो आदमी एकदम लंका के रणमैदान में भयंकर रूप में प्रस्तुत होता है।

तो, मेरे भाई-बहन, व्यक्ति का कुछ विशिष्ट वर्तन देखकर साधक को बहुत सावधान रहना चाहिए। तुरंत निर्णय न दिया जाय। गुजराती में दो पंक्ति है -

उपरथी उजळा एवां देखातां सज्जनो जेवां,
पण स्वार्थी मन तणां मेलां मळे त्यारे भयंकर छे.

रावण प्रणाम करता है सीता को और दूसरी ही क्षण अपहरण करता है! और सीता का प्रतिबिंब-छाया जो है वो विमान में लेकर जाता है। और इसका अर्थ मेरी व्यासपीठ को बहुत प्यारा लगता है। प्यारा ही क्या,

हकीकत लगता है कि मूल सीता है वो तो अग्नि में समाई है। और छायामात्र है वो रावण के साथ विमान में है। क्या मतलब? असली भक्ति है उसको तो कायम अग्नि में ही रहना पड़ता है। आभासी भक्ति ही विमानों में उड़ाउड़ करती है!

सीता का अपहरण होता है। अशोकवाटिका में यत्न करके रावण जानकी को रख देता है। मैं आपसे एक बात पूछुं कि रावण सीताजी का अपहरण करके अशोकवाटिका में रख देता है उसके बाद वो मिलने कितनी बार गया सीता को? गया ही नहीं! लेकिन यहां रावण फिर अच्छा दिखता है कि सिर्फ एक बार सीता को मिलने गया है ये आदमी। और जब सीता को मिलने गया तब अकेला नहीं गया। मंदोदरी आदि अपनी रानियों को लेकर सीता को मिलने गया। ये पहलू अच्छा लगता है। और मुझे इससे ज्यादा अच्छी बात ये लगती है कि हनुमानजी जब आ गये हैं अशोकवाटिका में उसके बाद ही मिलने गया। इसका कारण कि मैं एक परस्त्री को मिलने जाउं तब अकेला न जाउं; मेरा गुरु हाज़िर हो तब जाउं। ये बड़ा प्यारा पक्ष है। हनुमान उनके गुरु है। गुरु की मौजूदगी में गया।

मैं युवानों को कहता रहता हूं कि जीवन है उसमें समस्यायें तो आती ही है। लेकिन समस्या आने से पहले समाधान ओलरेडी आ गया होता है। हनुमान ओलरेडी आगे से बैठा है। हम केवल समस्या को देखते हैं! कोई अज्ञात हाथ हमारे लिए ओलरेडी आगे से आया है, वो हम आध्यात्मिक विवेक के अभाव में पहचान नहीं पाते हैं। अस्तित्व का एक नियम है कि भगवान यदि पानी न बनाये तो किसी को तरस देने का परमात्मा को अधिकार नहीं है। परमात्मा यदि भोजन न बनाये तो किसी को भूख देने का ईश्वर को अधिकार नहीं है। ईश्वर यदि समस्या दे तो परमात्मा का कर्तव्य है, पहले ओलरेडी समाधान किसी न किसी रूप में हमारे सामने रख देता है कि तू आंखें खोल! तू देख!

तो, सीता को इस तरह वो लंका में बंदी बना देता है। और यहां भगवान राम जानकी की खोज करते हुए जटायु को पितातुल्य आदर देकर जाते हैं। शबरी के आश्रम में आते हैं। शबरी से नव प्रकार की भक्ति की चर्चा होती है। वहीं से भगवान पंपा सरोवर गए। वहां नारद से भेंट हुई। वहां 'अरण्यकांड' को विराम दिया गया और 'किष्किन्धाकांड' में भगवान सीता की खोज में आगे निकलते हैं। हनुमान और राम का मिलन होता है। हनुमानजी की कृपा से सुग्रीव और राम की मैत्री हो जाती है। उसके बाद वालि का निर्वाण होता है। सुग्रीव को राजतिलक होता है। अंगद को युवराजपद मिलता है। और भगवान उदासीनव्रत के कारण चातुर्मास करने के लिए प्रवर्षण पर्वत की गुफा में ठहरते हैं। सुग्रीव भोग के कारण कार्य भूल जाता है। थोड़ा भय दिखाकर सुग्रीव को फिर शरण में लाया गया। और जानकी की शोध की योजना बनी। अंगद की अगवानी में एक टुकडी दक्षिण को भेजी जिसमें जामवंत भी है, हनुमानजी भी है। स्वयंप्रभा नामकी एक तपस्वी के पास पहुंचते हैं। वहां से थोड़ा मार्गदर्शन मिला। और सब लोग समुद्र के तट पर संपाति नामक गीध के पास आते हैं। और संपाति कहते हैं, सीता अशोकवाटिका में है। पता हुआ, सीता अशोकवाटिका में है। जाये कौन? आख़िर में हनुमानजी महाराज को आह्वान किया गया। और हनुमानजी महाराज लंका जाने के लिए प्रस्तुत होते हैं। वहां 'किष्किन्धाकांड' को पूरा करके 'सुन्दरकांड' का आरंभ होता है।

हनुमानजी लंका की यात्रा का आरंभ करते हैं आकाश मारग से। उनके मारग में तीन विघ्न आते हैं। एक तो मैनाक नाम का पर्वत जो सोने का है, समंदर में आश्रित है उसको वो बाहर निकालता है कि हनुमानजी को जरा आराम करवाओ। संतों से मैंने सुना कि जब भक्ति खोज के लिए कोई साधक चलता है तो आराम के बहाने पहला विघ्न आता है सोने का पहाड। समृद्धि। सुख-सुविधायें ये भक्ति के मारग की बाधांये है।

हनुमानजी बहुत सावधान है। पर्वत पर हाथ रखकर कहा, भैया, धन्यवाद, आप मुझे आराम देने के लिए आये, लेकिन मेरी आराम की परिभाषा बिलग है। जब तक राम का कार्य न हो, मोहे विश्राम नहीं है। हनुमानजी बहुत आदर के साथ पसार हो गये।

आपके पास कोई विद्या आ जाये, कोई शुभ प्रवृत्ति आ जाये तो बहुत सुविधा आयेगी। लेकिन नहीं, हमको सुविधा का कुछ नहीं! हम तो त्यागी है, ऐसा अभिमान मत करना। उसको भी आदर देना। सोने को हनुमानजी ने छूआ। उपेक्षा नहीं की। आदर दिया। और विवेक से ओवरटेईक कर गए। उसके बाद सुरसा आती है सर्पों की माता, मुंह फैलाकर हनुमानजी को निगलने के लिए। ये भी एक विघ्न है। फिर पानी से एक विघ्न आया। राक्षसी निकलती है। हनुमानजी की छाया पकड़ती है। फिर लंका में जाते हैं तो लंकिनी का विघ्न। इसका मतलब ये हुआ कि भक्ति के मारग पर, शांति के मारग पर आकाश से भी विघ्न आते हैं, पृथ्वी से भी विघ्न निकलते हैं और जल से भी विघ्न आते हैं। चारों ओर से विघ्न आने लगेंगे। इन सबसे जो पार होगा वो अंततोगत्वा भक्ति तक पहुंच पाता है।

तो, हनुमानजी सबसे पार होकर लंका में प्रवेश करते हैं। एक-एक भवन में घूमे, कहीं सीता नहीं दिखी। विभीषण के घर गए और विभीषण ने हनुमानजी से सीता कहां है वो युक्ति बताई। भक्ति के दर्शन की युक्ति एक वैष्णव ने हनुमानजी को बताई। हनुमानजी सीता तक पहुंच जाते हैं। जानकी से कहते हैं, मैं राम का दूत हूं। जानकीजी के सामने हनुमानजी ने सब बातें खोली। प्रतीति हुई। हनुमान को आशीर्वाद दिया। हनुमानजी को भूख लगी। फल खाये। वृक्ष तोड़े। अक्षयकुमार आदि सब आये, उनको मार दिया। इन्द्रजित आता है और हनुमानजी को रावण के दरबार में ले जाता है। आख़िर में हनुमान को जलाने की कोशिश की। और हनुमानजी की पूंछ जलाते हैं। और पूरी लंका जल जाती है! भक्ति का दर्शन जो करता है उसको समाजरूपी लंका जलाने की पूरी कोशिश करेगी। अपने घर के घी-कपड़ें ले-लेके जलाने की कोशिश करेगी। एक शे'र है -

आग तो अपने ही लगाते हैं।
गैर तो सिर्फ़ हवा देते हैं।

तो, सबने हनुमान को जलाने की कोशिश की। लेकिन जिसका भक्तिदर्शन पक्का होगा वो आदमी जलेगा नहीं, समाज की उनके प्रति हुई धारणा को जला देगा, इन मान्यताओं को खत्म कर देगा। और हनुमानजी समंदर नांघकर आये। मित्र प्रतीक्षा कर रहे थे। मधुवन गये, सुग्रीव के पास गये। रामजी के पास आये और प्रभु का अभियान चला है लंका की ओर। समुद्र के तट पर प्रभु ने डेरा डाला।

यहां रावण की सभा में चर्चा चली कि क्या किया जाय? विभीषण ने अच्छी सलाह दी। रावण ने चरणप्रहार किया और विभीषण निष्कासित हुआ। विभीषण प्रभु की शरण में आता है। भगवान शरणागत को रखते हैं। संस्कृत में 'शरण' शब्द का अर्थ होता है घर और रक्षक। ये खास करके अमरकोष का अर्थ है। विभीषण को प्रभु ने शरण में रखा इसका मतलब प्रभु ने उसको रक्षण भी दिया और कुछ समय के बाद घर भी दे दिया। लंका का राज भी दिया। प्रभु तीन दिन समंदर के तट पर बैठे। समंदर ने कोई जवाब नहीं दिया। भगवान ने थोड़ा डर दिखाया। समंदर प्रभु की शरण में आया। सेतु बांधने का प्रस्ताव रखा और समुद्र प्रभु को प्रणाम करके लौट गया।

'लंकाकांड' का आरंभ होता है। सेतुबंध हुआ। प्रभु की विचारधारा जोड़ने की है, तोड़ने की नहीं। ऋषिमुनियों को बुलाया और भगवान ने वहां महादेव रामेश्वर की स्थापना की। रामकथा के अनुसार तो शिव राम के उपासक है और राम महादेव के उपासक है। लड़ रहे हैं हम लोग! हरि-हर में भेद? अनुयायी लोग बहुत मुश्किल कर देते हैं! हम रामेश्वर के लिए कौन-सा शब्द यूझ करते हैं? 'सेतुबंध रामेश्वरम्।' समाज में जोड़ने की प्रत्येक प्रक्रिया राम का ईश्वर है, राम का इष्ट है। भगवान

की सेना लंका पहुंची। सुबेल पर प्रभु का ऊतारा। राजदूत के रूप में संधि के लिए अंगद को भेजा कि यदि रावण समझ जाये तो युद्ध नहीं करना है। लेकिन नियति, नियति है। मंत्रणा विफल। युद्ध अनिवार्य। घमासाण युद्ध होता है। आखिर में इकत्तीस बाण लेकर भगवान रावण का निर्वाण करते हैं। और रावण जीवन में पहली बार और आखिरी बार 'राम' शब्द का उच्चारण करके अपना तेज प्रभु के तेज में विलीन कर देता है।

विभीषण को राजतिलक हुआ। जानकीजी को खबर दी। राम ओर जानकी का मिलन हुआ है। पुष्पक तैयार हुआ। भगवान राम अपने खास सखाओं को लेकर अयोध्या लौटने के लिए तैयार होते हैं। भगवान का विमान शृंगबेरपुर आता है। हनुमानजी भरतादि सबको खबर करते हैं। पूरी अयोध्या में आनंद छा गया कि प्रभु सकुशल आ रहे हैं। हनुमानजी ने पुनः प्रभु को खबर दी और विमान अयोध्या में उतरा। भरत और राम मिले तो कोई निर्णय नहीं कर पाया कि इसमें कौन वनवासी थे? गुरुदेव वशिष्ठजी के चरणों में प्रभु ने शस्त्र फैंककर प्रणाम कर लिया। एक-दूसरे का परिचय सबको करवाया। जैसी जिसकी भावना थी प्रभु ने ऐसा उसको साक्षात्कार दिया। उसके बाद भगवान सबसे पहले माँ कैकेयी के भवन गए ताकि माँ कैकेयी का संकोच, उनकी ग्लानि मिट जाये। माता के पैर छुए। सब मिलकर सुमित्रा को प्रणाम करते हैं। कौशल्या को मिले। दिव्य सिंहासन मांगा। वशिष्ठजी ने ब्राह्मणों से कहा कि आज ही राजतिलक कर दे? सबने कहा, एक दिन बाद करने गये तो ममता की एक रात बीच में आ गई। उसने रामराज्य को चौदह साल का धक्का दे दिया! अब अभी ही करते हैं।

भगवान राम-जानकी को आदेश हुआ, आप राजगादी पर बिराजमान होईए। पृथ्वी को, सूर्य को, दिशाओं को, माताओं को, प्रजाजनों को, मंत्रीओं को, गुरुजनों को सबको प्रणाम करके सीता-रामजी सिंघासन पर बिराजमान हुए और वशिष्ठजी के हाथों से त्रिभुवन को रामराज्य प्राप्त हो उसका तिलक भगवान के भाल में वशिष्ठजी कर रहे हैं। और त्रिभुवन में रामराज्य की उद्घोषणा हुई।

रामराज्य की स्थापना हुई। छः मास बीत गए। अब प्रभु ने सभी मित्रों को बिदा दी, सुग्रीव, अंगद, गुह, जामवंत, विभीषण। लेकिन हनुमानजी की बिदा का प्रसंग आया तब हनुमानजी चुप हो गए। भगवान बिदा देने गए सरजू तट तक तब हनुमानजी जाकर सुग्रीव को वंदन करके पूछते हैं कि आप मेरे मालिक है, मैं आपका सेवक हूं। आपकी रजा लेना मेरा कर्तव्य है। यदि आप कहे तो मैं अयोध्या में रह जाऊं? तब सुग्रीव ये वचन बोलता है, जो पंक्ति हमने इस कथा के आधार में उठाई है-

पुन्य पुंज तुम्ह पवनकुमारा ।
सेवहु जाइ कृपा आगारा ।।

हनुमानजी को सुग्रीव ने कहा, आप तो पुन्यपुंज है इसीलिए आप राम के पास रहकर आप कृपाआगार की सेवा करे। हनुमानजी को रजा मिल गई। समय बीतने लगा। और मानवलीला है राम की इसीलिए तुलसी ने लिख दिया। समयमर्यादा पूरी होके जानकी ने दो पुत्रों को जन्म दिया। रघुकुल के वारिस का नाम बताकर फिर रघुकुल की आगे की कथा तुलसीदासजी ने लिखी नहीं है। क्योंकि तुलसी को अभिप्रेत है संवाद। उसके बाद आप जानते हैं, कागभुशुंडिजी महाराज के आश्रम में गरुड जाते हैं, रामकथा सुनते हैं। आखिर में सात प्रश्न पूछते हैं और भुशुंडिजी गरुड को सात प्रश्न के उत्तर देते हैं।

तो, चार जगह पर कथा चल रही है। वहां कागभुशुंडि ने गरुड के सामने नीलगिरि पर्वत पर कथा को विराम दिया। तीरथराज प्रयाग में याज्ञवल्क्यजी भरद्वाजजी को कथा सुनाते रहे, वहां विराम दिया कि नहीं, स्पष्ट नहीं है। शायद गंगा बहती रहेगी तब तक कथा चलती रहेगी। काश! हम सुन पाये! कैलास के ऊत्तुंग शिखर पर बैठे भगवान शिव ने कथा को विराम दिया। कलिपावनावतार पूज्यपाद गोस्वामीजी अपने मन को संबोधन करते हुए कथा को विराम देते हुए कुछ शब्द बोले हैं -

जाकी कृपा लवलेस ते मतिमंद तुलसीदासहूँ।
पायो परम बिश्रामु राम समान प्रभु नाहीं कहूँ।।

कुल मिलाकर इन परम आचार्यों ने अपनी-अपनी पीठ से रामकथा को विराम दिया। इन चारों आचार्यों की अनुग्रह छाया में बैठकर अमरिका की भूमि पर इस नगर में नव दिवसीय रामकथा 'मानस-पुन्यपुंज'

जिसको मैं प्रेमयज्ञ कहता हूं वो चली। आज मेरी व्यासपीठ भी उसको विराम देने की ओर है तब आखिर में जो कुछ कहना है सो मैं कहूं।

हमने इस कथा का नाम रखा 'मानस-पुन्यपुंज'; उसकी संवादी चर्चा हम करते रहे। अब 'मानस-पुन्यपुंज' ये शीर्षक है इस रामकथा का तो इसका सीधा-सादा अर्थ ये हो गया 'मानस' स्वयं पुन्यपुंज है। खाली एक-दो पुन्य नहीं, ये 'मानस' जो शास्त्र है वो पुन्यपुंज है, पुन्यराशि है। तो इस पुन्यपुंज शास्त्र को लेकर मैं और आप परमात्मा की कृपा से इस अधिक मास में संवाद कर रहे थे।

पृथ्वी वायु अग्नि जलं खं पुन्या:प्रकीर्तिता। शास्त्रवचन है, पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश ये पांचों तत्त्वों को मनीषियोंने पुन्य कहा है। अब ज्यादा अवकाश नहीं है इसीलिए उसका भाष्य मैं ज्यादा आपके साथ नहीं कर पाउंगा। लेकिन पृथ्वी ये पुन्य है। हमारे यहां कहा जाता है, वसुंधरा पुन्यवती है। ये धरती जिस पर हम बस रहे हैं ये पुन्य है। पृथ्वी स्वयं पुन्य है तीन कारणों से। एक तो, पृथ्वी हम सबको धारण करती है। किसीको धारण करना, किसीका पालक होना पुन्य है। दूसरा, धरती सहन बहुत करती है। पृथ्वी सहन बहुत करती है। इसीलिए शब्दकोशों में पृथ्वी का एक नाम क्षमा है। क्षमा पुन्य है। तो, पृथ्वी धारक है इसीलिए पुन्य है। पृथ्वी क्षमावंत और सहनशील है, इसीलिए ये पुन्य है। और पृथ्वी रत्न का खजाना है। समुद्र में से तो चौदह रत्न निकलते हैं। और निकलते हैं तो भी समुद्र ही तो पृथ्वी पर है ना? धरती पुन्यशाली इसीलिए है क्योंकि हमारे यहां ये उक्ति है, 'बहुरत्ना वसुंधरा।' यहां तो रत्न ही रत्न है। तो, पृथ्वी पुन्य है। और वायु; वायु पुन्य है। वायु न होता तो कैसे लोग जीते? किसी को जीने का सामान देना पुन्य है। तो, पवन पुन्य है। इसके बिना हम जी नहीं सकते। जल, पानी पुन्य है। पवित्र है। पानी के बिना जीवन नहीं है। अग्नि तो वेदमंत्र में पहला मंत्र है। हमारी उपासना ही तो अग्नि की है। अग्नि मानी सूर्य ले लो, जो प्रकाश के तत्त्व है वो सब अग्नि में समाहित है। तो अग्नि पुन्य है। और आकाश पुन्य है। सब आकाश में घूम रहे हैं। इतने ब्रह्मांड में हम सब तैर रहे हैं अपने-अपने ग्रहों में।

तो ये पांचो तत्त्वों पुन्य है। 'मानस' पुन्यपुंज है तो ये पांचों 'मानस' में है। पृथ्वी; पृथ्वी क्या पृथ्वी की बेटी 'मानस' में है। जानकी जो धरती की कन्या है। जिस पर रामकथा अवलंबित है। तो पृथ्वी तत्त्व है 'मानस' में। अग्नि मानी सूर्य। वंश ही सूर्य का। दिनकर वंश है। सूर्य तत्त्व है इस पुन्यपुंज शास्त्र में। 'प्रभु तुम्हार कुल गुरु जलधि।' 'रामचरित मानस' में लिखा है कि प्रभु, समुद्र ये तुम्हारा कुलगुरु है। ये जलतत्त्व 'मानस' में समाहित है। जैसे आदमी का पंचभौतिक शरीर होता है वैसे एक ग्रंथ का भी पंचभौतिक विग्रह होता है। 'रामायण' ग्रंथ नहीं है, सद्ग्रंथ है। ये किताब नहीं है, इन्सान का कलेजा है, तुलसी का कलेजा है। तो, पृथ्वीतत्त्व है सीता के रूप में। राम के रूप में सूर्यतत्त्व है। जलतत्त्व है। और 'रामचरित मानस' में वायुतत्त्व है, पवनपुत्र के रूप में। वायुतत्त्व भी पुन्य का हमें संकेत करता है। और आकाश तत्त्व है, 'चिदाकाशमाकाशवासं भजेहं।' भगवान महादेव शिव है ये आकाशरूप है।

तो पांचों तत्त्वों 'मानस' में होने के कारण 'मानस' पुन्यपुंज है। अब जरा अपनी ओर देखें। जो देह को लागू होता है सो ब्रह्मांड को लागू होता है और जो ब्रह्मांड में है वो सूक्ष्मरूप में देह में भी है, पिंड में भी है। मेरी और आपकी काया तभी पुन्यमय मानी जायेगी जब हमारे पंचभौतिक शरीर में सहनशीलता और क्षमा का गुण हो; जब हमारे जीवन में अग्नितत्त्व, सूर्यतत्त्व, प्रकाश तत्त्व हो, उजाला हो। 'तमसो मा ज्योतिर्गमय।' यदि व्यक्ति के जीवन में ये तेजस्विता हो, ये प्रकाश हो, ये आदमी की काया पुन्यराशि है, पुन्यमय है। पुन्यश्लोक है ये आदमी। हमारे पंचभौतिक शरीर में आकाश है। आकाश मानी निखालसता, निर्दोषता हो, हम पुन्यराशि है, पुन्यमय है। कहते हैं, बहुत से मात्रा में आदमी की

बोडी में पानी होता है। और कम हो जाता है तो डोक्टर चिंता करते हैं! पानी एक मात्रा में रहना चाहिए। लेकिन मेरा अर्थ यहां ये है कि पंचभौतिक शरीर हमारा पुन्यमय तभी माना जायेगा जब हमारी आंखों से प्रभुप्रेम के आंसू हो, करुणा के आंसू हो, अकारण आंसू हो। अहमद फ़राज़ ने कहा है कि-

जान तो चली जायेगी फराज़
दिल की धड़कनों का क्या?

प्रेमजल। हमें जन्म से एक शिक्षा मिलती है वो रोने की। डोक्टरी सायन्स भी कहता है, बच्चा जनमते न रोये तो चिंता का विषय है, उसको रुलाना पड़ता है। इस न्याय के कारण राम जनम लेते हैं तो तुलसीदासजी उसको भी रुलाते हैं। किसी की याद आंख भर दे। मेरी व्यासपीठ पुन्यमय जीवन उसको कहेगी जिसके पास जल हो, प्रेमजल हो। राज कौशिक का शे'र है-

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी-सी।
महोब्बत जिस में रहती है वो आंखें ओर होती है।

जाते-जाते मैं इतना ही कहूं मेरे भाई-बहन, अश्रु और आश्रय कभी मत छोड़ना। ये प्रेममार्गीओं की संपदा है। ये हमें पुन्यपुंज बना सकती है। वायुतत्त्व। मानो एक आदत-सी हो जाये कि हर सांस-वायु में किसी का हमें आभास रहे, हर सांस की वायु किसी की स्मृति में डूबी हो। अथवा तो वायुतत्त्व का अर्थ मैं ये भी कहूं कि जिसके जीवन में हनुमंत का प्राणतत्त्व हो। हनुमंत प्राणतत्त्व है; ये वायु है। वायु को पकड़ा नहीं जाता। रुह से महसूस किया जाता है। यदि सत्संग करते-करते हमारे जीवन में ये सब हो तो हम पुन्यराशि है। हम पुन्यश्लोक है।

तो, 'मानस' के आधार पर चली ये आध्यात्मिक चर्चा 'मानस-पुन्यपुंज' जिसको में विराम देने की ओर हूं तब बहुत शोर्ट नोटिस थी कथा आयोजन के लिए। भरतभाई ने भूषणसाहब का संपर्क किया और ये होना था तो हो गया! ये कथा का सुचारु रूप से आयोजन हुआ। मुझे सराहना करने का कोई कारण नहीं, मेरा स्वभाव भी नहीं। न कोई भेद, न कोई पास सिस्टम, न कोई वर्ग, न वी.आई.पी.। तो मेरी दृष्टि से सुचारु रूप से ये नवदिवसीय रामकथा विराम ले रही है इसीलिए मैं भी इस पूरे आयोजन के लिए व्यासपीठ से आप सबको बहुत-बहुत साधुवाद देता हूं कि आप इसके लिए निमित्त बने। ये योग था। भगवद्कृपा से सब संपन्न होता है। मैं मेरी प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। आईए, इस रामकथा के पुन्य को हम समर्पित कर दे। 'मानस-परमारथ' कथा गाकर आया और योगीओं के ईश्वर भगवान महादेव को अर्पण कर दी थी; हर को मैंने कथा अर्पण कर दी थी। और ये पुरुषोत्तम मास ये हरि का मास है, ये कथा में हरि को अर्पण कर देता हूं। 'हरिहर एक स्वरूप...' अधिक मास है, पुरुषोत्तम मास है, हरि का मास है इसीलिए वोशिंग्टन की रामकथा 'मानस-पुन्यपुंज' आईए, हम सब मिलकर श्री हरि के चरण में समर्पित करें।

ये 'मानस' जो शास्त्र है वो पुन्यपुंज है, पुन्यराशि है। पृथ्वी, अग्नि, वायु, जल और आकाश ये पांचों तत्त्वों को मनीषियोंने पुन्य कहा है। पृथ्वी ये पुन्य है। हमारे यहां कहा जाता है, वसुंधरा पुन्यवती है। पृथ्वी का एक नाम क्षमा है। पृथ्वी क्षमावंत और सहनशील है, इसीलिए ये पुन्य है। और वायु पुन्य है। वायु न होता तो कैसे लोग जीते? इसके बिना हम जी नहीं सकते। जल, पानी पुन्य है, पवित्र है। पानी के बिना जीवन नहीं है। अग्नि तो वेदमंत्र में पहला मंत्र है। अग्नि मानी सूर्य ले लो, जो प्रकाश के तत्त्व है वो सब अग्नि में समाहित है। तो अग्नि पुन्य है। और आकाश पुन्य है। सब आकाश में घूम रहे हैं। तो ये पांचो तत्त्वों पुन्य है। 'मानस' पुन्यपुंज है तो ये पांचों 'मानस' में है।

जो बांटता फिरता था जमाने को उज़ाला,
उस शख्स के दामन में अंधेरा भी बहुत है।
ये सच है कि तूने मुझे चाहा बहुत है,
लेकिन मेरी आंखों को रुलाया भी बहुत है।
– 'शाद' मुरादाबादी

मुझ को इस राह पे चलना ही नहीं।
जो मुझे तुझ से जुदा करती है।
– परवीन शाकिर

मेरे राहबर मुझको गुमराह कर दे,
सुना है कि मंज़िल करीब आ रही है।
– खुमार बाराबंकवी

हजार आफतों से बचे रहते हैं वो,
जो सुनते जियादा हैं, कम बोलते हैं।
– शरफ़ नानपारवी

ना कोई गुरु, ना कोई चेला।
अकेले में मेला, मेले में अकेला।
– मज़बूरसाहब

जान तो चली जायेगी फराज़,
दिल की धड़कनों का क्या?
– अहमद फ़राज़

कभी रोती कभी हंसती कभी लगती शराबी–सी।
महोब्बत जिस में रहती है वो आंखें ओर होती है।
– राज कौशिक

सर्जक का सर्जन सत्य की ओर ले जाता है

मनोहर त्रिवेदी के पुस्तकों के लोकार्पण प्रसंग पर मोरारिबापू का प्रासंगिक उद्‌बोधन

परम स्नेही आदरणीय मनोहर त्रिवेदी की दो पुस्तकें आज लोकार्पित हुई इस अवसर पर उपस्थित रहने का आनंद है। मुझे मनोहरभाई और माय डीयर जयु मिलने आए। मुझे अच्छा लगा। ऐसे मनोहर अवसर पर न आऊं तो ग्लानि महसूस हो। धर्म की ग्लानि के बारे में पता नहीं। जब चाहे होती हो। पर मुझे ग्लानि हो यह बात रुचिकर नहीं लगती। मैंने संमति दी। मुझे आनंद है। मनोहरभाई की किताबें देखी। मैं एक मुद्दा कहूं। 'वाचिकम्' से प्रसन्न हुआ। स्वाभाविक है। सबको समय की कमी लगती है। मनोहरभाई के लिए एक पूरे पर्व का आयोजन करना चाहिए। ऐसे समर्थ सर्जक को तो ही न्याय दे सके। भविष्य में ऐसा हो तो अच्छा है। लटूर से शुरू करूं। मुझे पसंद आया। सबको अच्छा लगा।

अभी सुमनभाई ने एक लेख लिखा कि संयुक्त और एकत्र होने का भाव हम खोते जा रहे हैं। गांव में रहकर कहते थे यह हमारा गांव, हमारा मंदिर, हमारा

मोहल्ला; 'मेरा' शब्द कहीं नहीं था। सभी साझेदारी और पत्तीहारी का था। यह बात उनके संबोधन में आई और फिर जो लटूर खोला! मैंने 'हनुमानचालीसा' पर काफी कथाएं की। आपने सुंदर अर्थ दिया। इस संदर्भ में दो मिनट बात कर आगे बढ़ूं। मुझे कई अच्छे अर्थ जानने को मिले। शत करोड 'रामायण' भाखी। 'चरितं रघुनाथस्य सत कोटि प्रविस्तरम्।' ऐसा विश्वामित्र 'रामरक्षास्तोत्र' में कहते हैं।

एक तो तात्कालिक हनुमान है। एक आदमी हनुमानजी के पास हर शनिवार को जाय। 'हनुमानचालीसा' का पाठकर एक ही मांग रखे कि दस लाख की लोटरी लग जाय! छः शनिवार छः सप्ताह गया। हनुमानजी कोई जवाब न दे। फिर झुंझलाया। जोरजोर से आक्रमक भाव से 'हनुमानचालीसा' पाठ किए। दस लाख की लोटरी लगा दीजिए! सिंदूर से हमने हनुमानजी का हाथ जड़ दिया था ताकि वो बाहर न निकाल सके! सिंदूर उखाडकर हाथ बाहर निकाल दिया! दो थप्पड जड दिए। कहा कि न दे सके तो ठीक है पर झुंझलते क्यों है? कहा, पर टिकट तो खरीद! कोई पुरुषार्थ नहीं करना! क्या टिकट लेने भी मैं जाऊं? राम अयोध्या आए। 'मानस' में कहा है -

पुनि निज जटा राम बिबराए।

रामजी ने अपने हाथों से जटा खोली। उदासीन व्रत से मुक्त हुए। बाकी के तीनों भाईयों की जटा रामने स्वयं खोल दी। उस समय कौशल्याजी ने कहा, हनुमानजी की लटें काट डालो। इन्हें ऐसा ही मत रखिए। जानकीजी ने ना कही। कहा, मेरे दुःख के समय अशोकवाटिका में सांत्वन इसी लटवाले (लटूरिया) लड़केने दी है। इनकी लटे मत काटना। उसे लटवाला ही रहने देना। मुझे लगता है तभी से ये लटवाले (लटूरिया) हनुमान है। साहब, जेसर से सावरकुंडला जाईए, हीपावडली गांव है वहां एक लटूरिया हनुमानजी का मंदिर है। दूसरा, पवन का स्वभाव है लटार मारना। यदि यह बंद हो जाय तो दुनिया ठप्प हो जाय। इसीसे पवन ने शायद दुलार का नाम हनुमान का रखा होगा कि तू मेरा लटूरिया। 'चरैवेति।' पवनपुत्र हनुमान घूमता ही रहता है।

मैं कथा कहना नहीं चाहता। पर मुझे बहुत अच्छा लगा। 'त्रायेतो महते भयात्', ऐसा 'भगवद्गीता' का एक वचन है कि यों एक छोटी-सी आस्था आदमी को पार लगा दे। मनोहर त्रिवेदी सुंदर लिखते हैं। इनकी कविता और गीतों से हम परिचित है। आज उनके गद्य से विशेष परिचित हुए। नानाभाई जेबलिया नामक मार्ग का नामकरण था। हम साथ में थे। उन्होंने उनके साथ के अनुभव कहे। मैं उपस्थित था। वे ढीले लग रहे थे! साहित्यकार भीगा हुआ होना चाहिए।

हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो!
ऐंसीने आरे आव्यो छुं;
मारो अगर जिवाडो!
हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो...

भगवतीकुमार शर्मा, उनका यह गीत ह्रस्व, दीर्घ, फलां, व्याकरण यों यों करते-करते अस्सी तक पहुंच गए!

हरि, मने अढी अक्षर शिखवाडो!
ऐंसीने आरे आव्यो छुं;
मारो अगर जिवाडो!
पोथीनां रींगणां बधां में, पोथीमां ज वघार्यां;
आंगण सूनुं, क्यारो खाली, प्रेमनी वेल उगाडो!

अस्सी तक पहुंचा हूं। मेरे देश की, अपने भाषा की लता हरी-भरी है। इसका कारण उनकी आंखों में तेज है और हृदय में नमी है। मुझे लगा वे आगे नहीं बोल पायेंगे! यह जो ढ़ाई अक्षर का भाव यदि थोड़ी-सी आस्था हो तो आदमी को पकड़ ले। माय डीयर जयु साहब, इनका यह नाम है। हम इसी तरह उन्हें संबोधित करते हैं। उन्होंने हनुमानजी को लेकर कितने सुंदर भाव प्रस्तुत किए! मुझे बहुत जानने को मिला। मैं प्रसन्न हूं।

आज हम दो ग्रंथों के लोकार्पण के अवसर पर एकत्र हुए हैं। मनोहरभाई को मैंने सदैव इसी तरह देखे हैं। सर्जक विरंचि बनकर हमें देने का स्वभाव लेकर आता है। सर्जक के पांच मुख होते हैं, साहब! सर्जक कभी भूल करे और अपनी रचना की ही प्रशंसा करने लगे, अपनी रचना के पीछे दौड़ने लगे तब कल्याण स्वरूप शंकर उसका एक सिर काट लेते हैं! मूल बात यह है कि ब्रह्मा के पांच मुख थे। उसके सर्जन के पीछे ब्रह्मा दौड़े पागल होकर, तब महादेव ने एक सिर काट लिया। भगवान की यह कृपा है। हमारे पास पांच मुखवाले सर्जक नहीं है पर चतुर्मुख सर्जक है। अपने सर्जन का अहोभाव हो पर अभिमान न हो। नहीं तो सिर कलम कर दिया जाय! सर्जक कैसा हो? ऐतिहासिक प्रसंग है। चंगीज़खान गुलाम खरीदता है। कितने ही खरीदे। साहब, उसमें एक सर्जक था अपनी मस्ती में रहनेवाला अच्छा और मजबूत। गुलाम बना पर 'को बिधि को निषेध।' सर्जक को क्या निषेध, क्या विधि? क्या बंधन, क्या मुक्ति? सर्जक ने जगत को काफी दिया था। अभी भी देता था। बादशाह ने पूछा, तेरी कीमत? उस युग में पांच-दस दिनार में गुलाम खरीदे जाते थे। 'तेरी कीमत?' तो कहे, 'मेरी कीमत डेढ सौ दिनार।' सर्जक का मूल्य समझा दिया। वैसे उनकी कोई कीमत नहीं होती। यदि कोई करे तो वह मूर्ख है! पर राजा ने हंसकर कहा, 'तेरी कीमत डेढ सौ दिनार?' 'अच्छा मेरी कीमत कितनी?' तो कहा, 'पांच दिनार।' साहब, ऐसी खुमारी होनी चाहिए। सर्जक की ऐसी तेजस्विता होनी चाहिए। राजा ने अट्टहास्य करके कहा, पांच दिनार तो मेरे पोषाक की कीमत है। तो कहा, तेरे पोषाक की ही कहता हूं! तेरा तो कुछ भी न मिले! जिसकी आंख में तेज और हृदय में नमी हो वही सर्जक है। वही हमें सही मार्ग दे सके। ऐसे चतुर्मुख सर्जक हमारे पास है। गांधीविचारधारा में हम हाफ पेन्ट पहनते थे। शिक्षण लेते थे। ब्लू रंग की हाफ पेन्ट थी। खद्दर की छोटी कमीज़। समय के बदलने में भी बदलता है। आदमी की बोली बदलती है। मानव के व्यवहार बदलते हैं। अभी तक अपने पास सर्जक विद्यमान है। जिनका पांचवां सिर नहीं है। 'रामायण' में एक चौपाई है -

निज कबित्त केहि लाग न नीका।
सरस होउ अथवा अति फीका।।

निज कविता, रचना किसे न सुहाए? सरस हो या फीकी हो। पर चतुर्मुखी सर्जक अपने पास है उनकी वंदना होनी चाहिए। उनकी दो पुस्तकें 'तेओ' और 'घरवखरी'। घर में जिसका अभाव है उसे भी संपदा मानकर मौज में रहते एक अकिंचन आदमी की यह घरसंबंधी चीजों की सामग्री है। 'तेओ' माने मेरे घर की संपदा है ऐसे अच्छे अर्थ में कवि ने कहा है। 'तेओ' मेरे घर की लक्ष्मी है। अमुक वस्तु तो सबको कहनी पड़ती है! पर कितनी सरस घरसम्बन्ध वस्तुसामग्री! हम तो नहीं जानते थे पर मनोहरभाई, आपने यह सब लिखकर हम पर उपकार किया है। नहीं तो ऐसी बातें हम कभी नहीं जान पाते।

साहित्यसर्जन विषयक ऐसा करना चाहिए। मेरी यह कक्षा नहीं कि कहूं, ऐसा कीजिए। मेरी अपेक्षा हो पर कहने की कक्षा न हो। भावक या वाचक के रूप या आपके श्रावक के रूप में अपेक्षा तो रहती है कि सर्जक का सर्जन हमें सत्य के प्रति ले जायगा। एक कहानी है। चार विद्यार्थी पढ़ रहे थे। रविवार था। वहां लिखा था, लाईट बंद है। लिफ्ट बंद है। तय हुआ पैरों से सीढियां चढ़नी पड़ेगी। चारों चढ़ने लगे। इक्कीसवें माले तक कैसे पहुंचे? उपाय निकला, प्रत्येक कहानी कहता जाय। इसी तरह कठिन मंज़िल तय हो जायगी। बातन में कटे पंथ। एक कहानी शुरू की। एक था राजा, एक थी रानी। कहते-सुनते सात माला चढ़ गए। फिर दूसरे ने शुरू की। एक ब्राह्मण गरीब था। ब्राह्मण हंमेशा गरीब ही होता है! पता नहीं, जिसके पास वेद की संपदा हो जिसे श्रीमद्भागवतकार व्यास और शुक, पिता-पुत्र दोनों; उनकी कलम और इसकी जीभ यों कहे कि 'ब्रह्मवित्तम्।' यह सुदामा ब्रह्मवित्त है, ब्रह्म का धनी है। उसके पास ब्रह्म की संपदा है। उसने ब्राह्मण की बात शुरू की। दूसरे आठ माले चढ़ गए। कितने हुए? पंद्रह। मूल इक्कीस है यह ध्यान रखियेगा। तीसरे ने कहानी शुरू की। एक था बनिया। ऐसी कहानी छोटी ही होती है! साहब, बीस माले चढ़ गए। इक्कीसवें माले की आठ पायदान बाकी थी। यों हाथ लम्बा करे, बातें करते-करते दो पायदान चढ़े और यों दरवाजा पकड़ सके, ताला पकड़ सके। तीनों ने कहा, तू कहानी शुरू कर। उसने कहा, कहानी शुरू

करूं इससे पहले तो पहुंच जायेंगे। हमें तो यह चढ़ाई पूरी करनी थी। कहे, ना, 'रघुकुल रीत सदा चली आई'; पता नहीं, मेरी कथा सुन गए होंगे नहीं तो उन्हें चौपाई कैसे आए? चौपाई की शुरूं! तो शुरू किया। यों करते-करते सात पायदान चढ़ गए। एक ही पायदान बाकी। उसने जिद्द की, हम यहां पंद्रह मिनट खड़े रहेंगे बाकी तुम्हें कहानी तो कहनी ही पड़ेगी। तब उसने कहा, मेरी कहानी बहुत छोटी है। चाबी नीचे गाडी में पड़ी है! यों हम भी इक्कीस-इक्कीस माले चढ़ जाय और सत्य पीछे छूट न जाय!

अपेक्षा ऐसी रहती है कि समग्र साहित्य हमें सत्य की ओर ले जाय। ऐसे प्रसंग हृदयस्पर्शी है। हमें सच लगता है क्योंकि सच्चे अनुभव से लिखा गया है। सत्य तक पहुंचाये वही 'भूतल भक्ति पदारथ मोटुं।' इससे बड़ा पदार्थ कोई नहीं है। जो सर्जक और साहित्य हमें प्रेम तक पहुंचाए, 'हवे व्हालनी वेल उगाडो, हरि मने अढी अक्षर शिखवाडो।' मैं सूरत में भगवती बापा से मिलूंगा। मानो सर्जन का निचोड कहते हैं। समग्र सर्जन की प्रक्रिया अंत में हमें करुणा तक ले जाती है। शायद यही आज के युग की प्रस्थानत्रयी है। हमें इसकी ओर ले जाय तो हम हलके-फूलके हो जायेंगे।

इतना बड़ा कार्य करने के बाद हलका-फूलका होना बहुत कठिन है, साहब! यह ऐसे वैसे का काम नहीं है। मैंने अभी संतवाणी में कहा है, निज़ामुद्दीन ओलिया बिस्तर, चद्दर बिछाए। इत्र डाल धूप करे। एक चादर ऊठा दी। अमीर खुशरो ने कहा, 'आका, मालिक, यह काम तो मेरा है। आप क्यों करते हैं? मेरी ड्यूटी है।' निज़ामुद्दीन ने कहा कि 'आज मैंने शब्द को सुला दिया है।' 'शब्द को क्यों सुलाया?' तो कहा, 'वह मुझे सोने नहीं देता!' ज्यों माँ कहे और बच्चा सो जाए वैसे ही मैं सो सकूं। 'शबदमें जिनकुं खबरां पडी।' इस शब्द के सभी साधक अपने पास है इसका आनंद है। शब्द का वजन बहुत लगता है। साहित्य से हम हलके-फूलके हो जाते हैं। साहित्य सर्जक और भावक को आनंदित कर दे।

आपके कार्य को साधुवाद कर आखिर में एक शेर साथ पूरा करूं। 'लटूर' का काम बहुत पसंद आया। लटूर 'चरैवेति' का पर्याय है। जो घूमता रहता है वह लटूर है। जैसा मेरा रुखड बावा। वैसे ही लटूर बावा! बड़े श्रीमंत घरों में कहा जाता है छोटे बच्चे को कि मेरा भटुरिया! लटूरिया का कीजिए पर भटुरिया पर भरोसा मत कीजिए! चाहे थोड़ा-सा भी भरोसा कीजिए। साहब, मैं प्रसन्नता व्यक्त करता हूं। हलके, मृदु सरल रहिए। धार्मिक जगत ने तो हद कर दी! हमने भी हद कर दी है! गंभीर लोगों को खासकर कथाकारों को जहाज में बिठाकर एक माह तक समुद्र के बीचोबीच पहुंचा दीजिए ऐसा विनुभाई मेहता कहते थे! फिर इन दो सौ लोगों से कहे, आप दो सौ हैं, आप में से प्रत्येक तीन-तीन घंटे तक कथा कीजिए! साहब, इन्होंने समाज को दु:खी-दु:खी कर दिया है! वजनी कर दिया है! धर्म हंसता हुआ होना चाहिए। जगद्गुरु आदि शंकराचार्य का वाक्य है, 'प्रसन्नचित्त रहिए।' सरल होने के लिए प्रसन्न रहिए।

अंत में कहूं, दोनों ग्रंथों का स्पर्शकर मुझे अहोभाव जगा है। स्पर्शसुख मिल रहा है। आप तो गुरुजन है, साहब! पिता का हत्यारा, आक्रमक औरंगझेब धार्मिक था। बंदगी कर, पांच नमाज़ पढ़कर पवित्र कुर्रान का स्पर्श करता था। उससे पूछा, शास्त्र क्या है? शास्त्र का फल नमाज़-बंदगी है। इसका स्पर्श क्यों करते हो? उसने कहा, मैं बहुत आक्रमक हूं। पवित्र कुर्रान का स्पर्श करने से मेरी आक्रमकता कम होती है। साहब, ग्रंथ के स्पर्श करने से आक्रमकता कम हो, मानव के भीतर दबा सत्य उजागर हो, हम अधिक पवित्रता महसूस करे, ऐसे ग्रंथ हमारे पास है। इन्होंने तो तय किया है कि रोज नया सर्जन करे। आंगन में जुआर के दानें डाले। अब प्रतीक्षा है पंखियों की। मायाभाई ने पहल की अच्छा किया। अंत में कहूं, निर्भार होना है तो प्रसन्न रहिए।

कुछ इस तरह मैंने जिंदगी को आसां कर दिया।
किसी से माफ़ी मांग ली किसी को माफ़ कर दिया।

मनोहर त्रिवेदी के ग्रंथ-विमोचन समारोह में भावनगर (गुजरात) में प्रस्तुत वक्तव्य : १०-१२-२०१४

॥ जय सीयाराम ॥